इंसान और अन्य एकांकी

विष्णु प्रभाकर

1947

इन्सान

और

अन्य एकांकी

★

लेखक

विष्णु प्रभाकर बी० ए०

★

हिन्दी ज्ञानमन्दिर ग्रंथावली—७

बड़े भया को

जो

सुधार और क्रांति-मार्गों

के

सन्धि-स्थल पर खड़े हुए

नव भारत

के

प्रतिनिधि

हैं

१ ब्रह्मलोक

पात्र

मां—वीरेन की मां

वीना—वीरेन की पत्नी

मिस सईदा—डाक्टर

मिस न्यूटन—एक नर्स

वीरेन—एक युवक

कई अन्य युवक—अनेक स्त्री, पुरुष, बच्चे-नर्स आया आदि

समय—दोपहर से संध्या तक।

स्थान—नगर का एक जच्चा-बच्चा अस्पताल।

[स्टेज पर सन्नाटा है। कभी कभी अन्दर हल्की-हल्की खटर-पटर होती है। इसी समय एक स्त्री बाहर से आकर दरवाजा थपथपाती है। वह वीरेन की मां है और घबरा रही है।]

मां (घबराया स्वर)—डाक्टर साब! डाक्टर साब!!

मिस सईदा (अन्दर से)—कौन?

मां—डाक्टर साब! मैं अन्दर आस कती हूं।

मिस सईदा (अन्दर से) - मैं आती हूं। (बाहिर आकर) क्या बात है?

मां (जल्दी जल्दी)—मेरी बहू......वीना......!

मिस सईदा (बीच में)—वीना, मिसेज वीरेन! हालत कुछ बेहतर है। हम कोशिश कर रहे हैं।

मां—लेकिन मैं अन्दर आना चाहती हूं, डाक्टर साब!

मिस सईदा (जाते जाते)—नहीं! आप अन्दर नहीं आ सकतीं (पुकार कर) नर्स—मिस न्यूटन!

मिस न्यूटन (दूर से)—जी आती हूं।

[मिस न्यूटन का प्रवेश]

मां—आपका नाम मिस न्यूटन है?

मिस न्यूटन—ल्यूटन नहीं जी, न्यूटन । आपका मतलब ?
मां –मैं वीना के पास जाना चाहती हूं ।
मिस न्यूटन · आप अन्दर नहीं जा सकतीं ।
मां–क्यों नहीं जा सकती ? वीना मेरी बहू है, अकेली है, डरती होगी ।
मिस न्यूटन (मुस्कराती है)—आप शायद वीरेन की मां हैं । घबराइये नहीं । वीना समझदार लड़की है । वह बिलकुल नहीं डरती । डरती आप हैं, परन्तु आप चार बजेसे पहले अन्दर नहीं जा सकती ।

[मिस न्यूटन का प्रस्थान]

मां—क्या मुसीबत है ? मैं अपनी बहू के पास नहीं जा सकती !

[वीरेन का प्रवेश]

वीरेन (अति प्रसन्न, गद्गद्) – मां ! मां !
मां (प्रसन्न स्वर) –कौन ! वीरेन !!!
वीरेन—मां, तुम कब आयीं ?
मां—अभी आयी हूं, लेकिन यहां तो कोई अन्दर ही नहीं जाने देता ?
वीरेन—यहां अन्दर जाने का हुक्म नहीं है, मां ।
मां – बिलकुल नहीं !
वीरेन–नहीं मां ? चार बजे सब जाते हैं और तुम सवेरे खाने के वक्त भी मिल सकती हो ।
[घंटी बजाता है । दरवाजा खुलता है । आया प्रवेश करती है]
आया—आप इन्जेक्शन लाये ?
वीरेन—हां ! यह तुम मिस न्यूटन को दे देना और क्या; हाल हैं ?
आया—शायद बच्चा होने वाला है ।
मां (चौंक कर)—बच्चा होने वाला है ? तब मैं अवश्य अन्दर जाऊँगी ।
आया—जी, आप अन्दर नहीं जा सकतीं ।
वीरेन—हां, मां ! तुम नहीं जा सकतीं, और तुम करोगी भी क्या ?
मां–करूंगी क्या ! वीरेन ! वह मेरी बहू है । मेरा पास होना जरूरी है ।

वीरेन–लेकिन, मां ये लोग इन बातों में विश्वास नहीं करते। एक बार अस्पताल के अन्दर जाने पर जिम्मेदारी इनकी हो जाती है। फिर ये और किसी को पास नहीं जाने देते।

मां—अपनों को भी नहीं ?

वीरेन—किसी को भी नहीं, मां। वे कहती हैं बीमार को संभालना हमारा काम है। आप आयेंगे तो हमारी क्या जरूरत है। फिर अपना आदमी मोह पैदा करता है और मोह से हिम्मत टूटती है......।

[सहसा किवाड़ खुलते हैं। एक वृद्धा बाहर आती है। वह बेहद दुखी है। आंखे लाल हैं]

मां--यह देखो वीरेन ! यह औरत अन्दर थी।

वीरेन--आह, मां ! इसके भाग्य फूटे हैं। दस दिन से इसकी लड़की बेहोश पड़ी है।

मां (घबराकर)—क्यों भइया ?

वीरेन—मरा हुआ लड़का पैदा हुआ था, तभी से गुम पड़ी है। कभी बोलती है तो बस बच्चे को पुकारती है—मेरा बच्चा ! मेरा बच्चा कहां है ?

मां (करुण स्वर)—हाय ! तब तो बचना कठिन है।

वीरेन--तभी मां ! इसे अन्दर जाने की आज्ञा मिल गयी है। यहां तो एक नयी दुनिया है। दिन रात लड़का, लड़की, मरना, जीना लगा रहता है। रात दो बजे एक स्त्री आयी। नर्स ने दाखिल करने से इन्कार कर दिया। बेड खाली नहीं थी। परन्तु वह स्त्री बरामदे में बैठ गई और देखते देखते कराहने लगी। नर्स क्रुद्ध तो हुई, परन्तु उसे अन्दर ले गयी और आध घन्टा भी न बीता होगा कि बाहर लौटी; उस स्त्री के पति से बोली–" जाइये दूध ले आइये।

आपके लड़का हुआ है।' पति मुस्कराया। एक बड़ा थरमस नर्स को देकर बोला---'मैं जानता था । इसमें सब जरूरी चीजें हैं।' तब मां ! मैं बहुत हंसा ।

मां (मुस्कराकर) —बेचारी के कोई और नहीं रहा होगा; भइया । (सहसा गम्भीर होकर) नर्स नहीं लौटी, क्या बात है ?

(दरवाजा खुलता है आया आती है ।)

मां--क्यों क्या हुआ ?

आया—अभी कुछ नहीं मां जी । (वीरेन से) मि० बशीर कहां गये ?

वीरेन—घर गये हैं । चार बजे लौटेंगे । क्या हुआ उनके ?

आया --(मुस्कराती है) दो लड़कियां !

वीरेन, मां { एक साथ } दो लड़कियां !! जुड़वा होंगी !

वीरेन–मां ! पांच लड़कियां उनके पहलेसे हैं । (आया से)देखो दूध या किसी चीजकी जरूरत हो तो हमारे सामान में से दे दो ।

(आया का प्रस्थान)

मां—सात लड़कियां ! बड़ी मुसीबत है ? (सहसा सामने देख कर (अरे, वह कौन है ? चपरासी के सामने किस तरह गिड़गिड़ा रहा है ?

वीरेन-वह भी एक दुखी है, मां,! घर पर चार बच्चे हैं । पत्नी यहां सूजी हुई पड़ी है । बेचारा मन्दिर का पुजारी है । जिस प्रकार देवी की मूर्तिके सामने प्रार्थना करता है, उसी प्रकार नर्स और डाक्टरके सामने गिड़गिड़ाता रहता है......।

मां [दर्द भरा स्वर]—और वे परवाह नहीं करते ? सच है गरीबों को कौन पूछता है ?

[दरवाजा फिर खुलता है । मिस न्यूटन का प्रवेश]

मिस न्यूटन–मि० वीरेन ! आप अभी जाकर लीवर एक्सट्रैक्ट इन्ट्रावीनस इन्जक्शन ला सकें तो ठीक होगा । खून की बेहद कमी है ।

वीरेन—मैं अभी जाता हूं। वैसे तो ठीक है न ?
मिस न्यूटन—परफैक्टली ओ० के०। बिल्कुल ठीक है। डोन्ट वरी।
मां—लेकिन मिस साब! बच्चा कब तक होगा ?
मिस न्यूटन [चुटकी बजा कर]—बस होने वाला है।
मां—मिस साब! एक क्षण के लिए मैं......[नर्स का प्रस्थान]...... सुनिये तो। क्या मुसीबत है ? मेरी बहू दर्द से तड़प रही है और मैं अन्दर नहीं जा सकती। क्या मैं समझती नहीं, बार बार दवा क्यों आती है ? उसे अवश्य ज्यादा तकलीफ है।

[दरवाजा फिर खुलता है। अन्दर से मिस न्यूटन और बाहरसे
[वीरेन का एक साथ प्रवेश]

मिस न्यूटन—मुबारिक मि० वीरेन। अभी, अभी आपके शाहजादे तशरीफ ले आये हैं।
मां—[उत्सुकता से] क्या ?
मिस न्यूटन—आपके पोता हुआ है जी! मिठाई लाइये।
वीरेन—शुक्रिया मिस न्यूटन! ये रहे इन्जैक्शन!
मां [प्रफुल्लित होकर]—लड़का! वीना के लड़का हुआ है। ओ भगवान! [सहसा जाग कर]अब मैं अवश्य अन्दर जाऊँगी।
मिस न्यूटन—जी नहीं। अभी नहीं।
मां—क्यों.........।
मिस न्यूटन [जाते-जाते]—क्यों कि अभी चार बजने में एक घण्टे की देर है।

[दरवाजा बन्द हो जाता है]

मां [सांस लेकर]—चलो परमात्मा ने मेरी सुन ली। न जाने किसका भाग्य सामने आया है जो बुढ़ापे में पोते का मुँह देखा......।
वीरेन (एकदम बीच में)—अभी मुँह कहां देखा है, मां। अभी तो...
मां—सदा बुरी कल्पना करता है, अभागा कहीं का! कानों से सुना है तो

आंखों से भी देखूंगी। लेकिन हां! तू अपने बाप को तार दे दे। जल्दी आवें। एक-एक खत दोनों बहिनों के पास डाल दे। मुंह उठाये कब से बाट जोह रही थी। बहू के मायके भी तार दे दे, और अपने भइया को चाहे तार दे, चाहे फोन कर दे। जा जल्दी कर और सुन . ...।

वीरेन (खीझ कर)—मां ....।

मां (बिना महसूस किये) —कोई पण्डित है पास में। कुण्डली बनवानी होगी। वक्त तो ये लोग लिखते होंगे।

वीरेन—सब कुछ करते हैं, मां। पर तूने तो एक हिस्ट्री सुनानी आरम्भ कर दी है।

मां (हँस कर)—अभी सुन ही रहा है। लड़का पाना क्या आसान है। हिन्दू के घर लड़का हुआ है। लेकिन अभी तेरा बाप बैठा है, तुझे करना क्या है......?

वीरेन—सो तो है मां लेकिन......

[बैक ग्राउण्ड में कोलाहल बढ़ता है और पास आता है। अनेक स्त्री-पुरुष, हिन्दू मुस्लिम-सिख, बूढ़े युवक-अधेड़-बच्चे, हंसते-रोते, घबराये-प्रसन्न वहां आने लगते हैं। कुछ शान्त हैं, कुछ बोलते हैं, कुछ उत्सुक हैं]

मां (चौंक कर)—क्या चार बज गया, वीरेन? ये सब मिलने आये हैं, रे।

वीरेन—पौने चार बज गया, मां! अब सब अन्दर जायेंगे।

एक युवक (पास आकर)—हैलो वीरेन! क्या खबर है?

वीरेन—ठीक है!

दूसरा युवक—बच्चा हुआ?

वीरेन—हां!

पहला—क्या?

वीरेन (मुस्करा कर)—लड़का!

तीसरा युवक—शानदार! मुबारिक हो.......।

[वे आगे बढ़ते हैं, कुछ और आते हैं]

मां--क्यों रे, सब तेरे दोस्त हैं ?

वीरेन—हां मां ! यहां न जाने किस-किससे दोस्ती हो गयी है। वह देखो, मां ! वह जो गांधी टोपी पहने है उसे पांच दिन बीते लड़का हुआ था। उसी दिन उसने सैकड़ों रुपये खर्च कर दिये। कल वही लड़का चल बसा।

मां [दर्द से]—हाय.........।

वीरेन—लेकिन मां, दिलेर इतना है कि माथे पर शिकन तक नहीं पड़ने दी। लो वह आ रहा है।

(युवक पास आता है। हँस रहा है)

युवक—अरे, वीरेन ! सुना लड़का आया है। भई ! मुबारिक (मां को देख कर) और मां आ गयीं ! भाग्यशाली हो पट्ठे। जिओ !

(और आगे बढ़ जाता है)

वीरेन—देखा मां.........।

मां—देखा, वीरेन ! पर मैंने बाल धूप में सफेद नहीं किये हैं, रे। मैं कहती हूँ इसका दिल मछली की तरह तड़प रहा है, मछली की तरह। तभी तो इतना हँसता है। [घंटी बज उठती है] लो, वे सब अन्दर गये। हम भी चलें।

वीरेन—हां, आओ, मां !

(सब बड़े द्वार से अन्दर जाते हैं। अस्पतालकी स्वच्छता, विशदता और सुन्दरता देखकर मां प्रसन्न होती हैं)

मां—बड़ा अच्छा है यहां तो। लेकिन बीना कहां है ?

वीरेन—वहीं चल रहे हैं, मां ! सबेरे इधर थी, अब उधर चली गयी।

मां—देख, देख, वीरेन ! सब कैसे मिल रहे हैं ? अरे, वह लड़की रो पड़ी।

वीरेन—अपनों को देख कर दिल भर ही आता है, मां।

मां—हां भइया ! और वह देखो वे बच्चे कैसे किलकारी मार रहे हैं !

शायद वह उनकी मां है। ये लोग तो मुसलमान जान पड़ते हैं, रे। परदा नहीं करते।

वीरेन—अस्पताल में छूतछात, परदा-वरदा, नहीं होता मां! यहां सब एक हैं। मिस न्यूटन ईसाई हैं। वीना को वे ही खिलाती-पिलाती हैं, डाक्टर मुसलमान है।

मां—तो कृष्टान बना दिया वीना को.........

वीरेन–और अब तुम भी बनो। यह रहा कमरा और सामने लेटी है वीना...

[मां झपट कर वीना के पास जाती है]

मां—वीना! बहू.........

वीना—[पीली पड़ी है। हल्की क्षीण मुस्कराहट मुख पर फैल जाती है —माता जी......।

मां—मेरी बच्ची! मेरी बहू! तू अच्छी है? तबीयत ठीक है?

वीना--[धीमा स्वर] सब ठीक है, माता जी! आप कब आयीं?

मां--दोपहर को आयी थी। किसी ने अन्दर आने ही नहीं दिया। कैसा कानून है?

वीना—माता जी! वे सबको अपना समझती हैं। सेवा भी खूब करती हैं पर जी नहीं लगता.........

मां—कैसे लगे, बेटी? घर घर है, अस्पताल अस्पताल। नाम सुनकर ही दिल डरता है। [पुकार कर] वीरेन! तू वहां क्यों खड़ा है? इधर आ शरमाता है।

वीरेन—आया, मां [पास आकर] मां!

मां—वीना के खाने पीने का क्या प्रबन्ध है?

वीरेन--इस समय ग्ल्यूकोस डालकर दूध देते हैं। बाद में फलों का रस, सूप और खिचड़ी दी जाती है।

मां [चकित]—कहीं जच्चा को भी दूध दिया जाता है?

वीरेन—मां ! ये लोग अपना काम खूब जानते हैं। हमें चिन्ता करने की जरूरत नहीं है।

मां—अच्छा, भाई ! तुम जानो। लेकिन बच्चा कहां है ?

वीरेन—उधर पालने नम्बर सात में लेटा होगा।

[मां का प्रस्थान। वीरेन वीना के पास आता है]

वीरेन [धीमा स्वर]—वीना !

वीना [धीमा उलाहना भरा स्वर]—बड़ा कष्ट होता है। मर जाना बेहतर है।

वीरेन (प्यार से)—मैं माफी चाहता हूँ और आगे के लिए कान पकड़ता हूं।

वीना (मुस्करा कर)—कैसे जल्दी छुट्टी पा गये ? मेरे स्थान पर होते तो...

वीरेन—तो मैं मां बनता। पर मेरे ऐसे भाग्य कहां ? वीना ! मां संसार की सर्वश्रेष्ठ हस्ती है और बच्चे को जन्म देकर उसने पीड़ा में वह मिठास भर दी है कि संसार उसे प्यार करता है......।

मां—(पुकारती है) वीरेन ! वीरेन।......

वीना—जाओ। यह कविता बन्द करो और देखो अपने उस पीड़ाके प्यारको !

वीरेन [जाते जाते]—तुमने देखा।

वीना—मैं क्यों न देखती ?

वीरेन—कैसा है ? [मां फिर पुकारती है]

वीना—अजी, जाओ भी। बिल्कुल तुम पर पड़ा है।

[वीरेन मांके पास जाता है]

मां—देखा तूने ? कैसी आंखें खोलता है ? बिल्कुल तू है ! बड़ी बड़ी आंखें, लम्बी सुआ सी नाक, चौड़ा माथा, छोटा-सा मुंह। रंग भी कुटुम्ब पर गया है......

[डाक्टर का प्रवेश]

मिस सईदा—[जाते जाते] यूअर बेबी इज परफैक्टली हैल्दी एण्ड नारमल मि० वीरेन।

वीरेन—थैंक्यू वेरी मच डाक्टर, यू हैव लेबर्ड ए लॉट टू सेव माई वाइफ।

[मिस सईदा मुस्करा कर आगे बढ़ जाती है। मिस न्यूटन रुक जाती है]

मां—वीरेन? इन बच्चों को देखकर मौत भी याद भूल जाती है। देखो, कैसे देखता है? मानो मौत पर जीत की खुशी मनाता हो।

मिस न्यूटन [मुस्कराती हैं] —खूब दादी साहिबा? आपको अपनी खूब याद आयी [सहसा घंटी बज उठती है] अच्छा! अब आप जाइये।

मां (चौंककर)—क्या! मैं अब यहां नहीं रह सकती?

मिस न्यूटन—जी नहीं? देखिये, वे सब जा रहे हैं। आप कल सबेरे आ सकती हैं।

मां (उदास होकर)— क्या मुसीबत है? मैं अपनी बहू, अपने पोते के पास नहीं रह सकती.......

वीरेन—मां! घंटी बज चुकी। आओ चलें।

[मां बेबस-सी चलती है। वीना के पास जाती है। आंखें बच्चे पर टिकी हैं]

मां—वीना, बेटी। मैं क्या करूँ? मुझे कोई रहने नहीं देता। तू घबराना मत। अच्छा।

वीना—अच्छा, माता जी!

[मां आगे बढ़ जाती है। वीना वीरेन को पुकारती है]

वीना—सुनो तो।

वीरेन-घंटी बज चुकी। मां गयी। कल फिर इसी वक्त, विदा, नमस्ते।

(जल्दी जल्दी आगे बढ़ता है)

मां—वीरेन! जा रही हूं, पर दिल फटता है। (सहसा देखकर) अरे वीरेन, वे बच्चे रो उठे हैं। मां से अलग नहीं होना चाहते।

वीरेन-(देख कर) इनके और कोई नहीं है, मां! बेचारा बाप ही इन्हें संभालता है। (तभी दोनों रोते बच्चों को गोद में संभाले वह पुरुष वहां आता है। पीछे उनकी मां गरदन उठाये देखती है। मां और वीरेन दोनों द्रवित होते हैं। मां समवेदना के स्वरमें कहती है)

मां—क्यों बेटा ? घर पर और कोई संभालनेवाला नहीं है ?

पुरुष—(विनम्र, पर दृढ़ वाणी) है क्यों नहीं मां, तुम्हारे प्रताप से मैं सब प्रकार समर्थ हूँ। जो अकेला है वही सबसे शक्तिशाली है। क्यों वीरेन ? अच्छा, बच्चो ! अब चुप हो जाओ। तुम रोओगे। मां को दुःख होगा। देखने वाले नाम धरेंगे।

[इसी तरह कहता हुआ वह पुरुष बाहिर चला जाता है। आश्चर्य से भरी भरी मां भी वीरेन के पीछे बाहर आती है। दरवाजा बन्द होता है। स्टेज पर अनेक स्त्री पुरुष, बच्चे, तरह तरहकी सुख दुख की बातें करतेहुए आते जातेहैं। इसी कोलाहल पर परदा गिर जाता है]

२ माँ-बाप

पात्र

अशोक—कालिज का एक विद्यार्थी

यदुनाथ — अशोक का सहपाठी

दामोदरस्वरूप — अशोक का पिता

रामदास — यदुनाथ का पिता

अमृतराम — देश के प्रसिद्ध नेता

कलावती — अशोक की मां

जगवन्ती — यदुनाथ की मां

अनिता — अशोक की बहन

डाक्टर, अनवर, शमशेर, राजेन्द्र आदि कुछ युवक

प्रथम दृश्य

[एक छोटे कस्बे में एक विशाल भवन का भीतरी भाग। अलग-अलग उसमें अनेक कुटुम्ब बसते हैं। इस समय वहां सन्नाटा है। कभी कभी किवाड़ खुलने या बोलने की आवाज सुन पड़ती है।

इसी भवन के ऊपरी भाग में एक छोटा-सा कमरा है। अनुपात से सामान उसमें बहुत है। कपड़ों के तीन ट्रंक, दो चीड़ की बेड, साइड टेबुल, तीन मोढे और तीन चारपाई। ऊपर की दीवार पर केवल नये साल का एक कैलेण्डर लटका है। एक अलमारी है; उसमें कुछ पुस्तकें, टीन के डब्बे, दो चायदानियां और दो--तीन गिलास हैं। ऊपर आले में सस्ती टाइमपीस पौने आठ बजा रही है।

कमरे के बीच में तीनों चारपाइयां पास-पास बिछी हैं। बिछावन साधारण है। दरवाजे के पास वाली चारपाई पर एक स्त्री अनमनी-सी बैठी है। उसका रंग गोरा और आकृति सुन्दर है। उमर लगभग ४५ है। दूसरी चारपाई पर एक पुरुष आंखें बन्द किये लेटा है। उसे ज्वर चढ़ा है। क्षण-क्षण में जाग कर वह स्त्री की ओर देखलेता है। फिर लम्बी सांस लेकर आंखें मीच लेता है। उसकी आयु ५० के ऊपर है। तीसरी चारपाई पर एक लड़की कम्बल ताने गहरी नींद में सोई है। सहसा स्त्री चौंक कर उठती है। नीचे कहीं तीन-चार आदमी बोलते सुन पड़ते हैं।]

स्त्री—(खुश होकर) — जान पड़ता है अशोक आ गया !

पुरुष— (आंखें खोल कर) अशोक आ गया ? कहां है ?

स्त्री—आप उठे क्यों ? लेट जाइए। मैं देखती हूं।

(स्त्री शीघ्रता से चली जाती है। पुरुष उसी तरह बैठा रह जाता है। स्त्री फिर आती है।

स्त्री — (घबरा कर) आप अपनी कुछ भी चिंता नहीं करते। अशोक नहीं आया है। राम बाबू देहली जा रहे हैं। अशोक की छुट्टियां आज से शुरू होती हैं। शायद कल आयेगा।

(वे चुपचाप आंखें बन्द कर लेते हैं। स्त्री अपनी खाट पर आ बैठती है।)

पु०-(आंखें खोल कर) सुनती हो ?

स्त्री—क्या जी ?

पु०— पंडित रामसेवक ने अशोक का वर्ष-फल बनाया है। कहता है इस

वर्ष ग्रह बहुत सुंदर हैं; जल्दी ही उसका नाम संसार में फैल जायगा।

स्त्री–(प्रसन्नता से भर कर) सच ?

पुरुष —पंडित रामसेवक माने हुए ज्योतिषी हैं। उनकी बात झूठ नहीं हो सकती और देखो न, अभी से उसका नाम अखबारों में छपने लगा है।

[कहते-कहते पुरुष की छाती उमड़ती है बोल नहीं सकता।]

स्त्री—(श्रद्धा से) पुत्र के भाग के साथ मां बाप की किस्मत जुड़ी होती है।

पुरुष —(गद्‌गद् होकर) कुछ भी हो दुनिया इस बात को जान लेगी कि दामोदरस्वरूप ने आप मुसीबतें उठायीं परन्तु लड़के को शिक्षा देने में कसर न रखी।

[इसी समय पास की चारपाई पर लड़की बड़बड़ा उठती है।]

स्त्री, पुरुष—(एक साथ चौंक कर) क्या है अनिता ? क्या है बेटी ?

लड़की — (नींद में) भइया... (जोर से) भइया तुम कहां जा रहे हो ? (करुणा से) मैं तुम्हारे साथ चलूँगी, भइया (जोर से) ओ भइया......

स्त्री—(पास जाकर) अनिता-अनिता !

अनिता—हड़बड़ा कर मां ?

स्त्री—क्या है बेटी ?

[अनिता उठ बैठती है। वह लगभग १५ साल की सुंदर लड़की है। घबराहट के कारण इधर-उधर देखती है। पर मां को देखकर ढाढ़स होती है]

स्त्री—(पास बैठकर) सपना देखती थी बेटी ! क्या था।

अनिता—बड़ा बुरा सपना था, मां ! भइया न जाने कहां चले गये ?

स्त्री—(मुस्करा कर) कहां चले गये, अनिता !

अनिता—मां ! एक वाटिका में मैं और भइया बैठे थे कि एक युवक ने आकर कहा— ' अशोक ! लड़ाई आरम्भ हो गयी। वे पागल हो उठे हैं। आओ हम चलें ' भइया उसी वक्त दौड़ पड़े। मैंने कहा—'कौन लड़ रहा है, भइया ?' भइया नहीं बोले। और वे चले गये, उसी तरह नंगे पांव और निहत्थे ! (कुछ कह कर) भइया नहीं आये, मां !

स्त्री—कल सबेरे आयेगा, बेटी !

पुरुष—(सोचकर) सपने का फल अच्छा होगा ! डरने की बात नहीं।

स्त्री, अनिता—(एक साथ) सच ! अच्छा होगा ?

पुरुष--हां ऐसे सपनों से उमर बढ़ने का योग होता है ।

अनिता—तब तो ठीक है मां ! (मुड़कर) ज्वर कैसा हैं पिताजी ?

पुरुष—(हँसकर) उतर जायगा बेटी ! (कुछ आहट पाकर ऊपर देखते हैं) रामदास आओ रामदास ! कैसे आये ?

रामदास—ज्वर उतरा, भइया !

दामोदरस्वरूप—उतर जायगा ! हां यदु आया क्या ?

रामदास--वही तो पूछता था ! अशोक भी नहीं दिखाई पड़ता। क्या बात है ? घर में तो रो-रो कर पागल हो रही है।

दामोदरस्वरूप--तुम्हारी स्त्री बड़ी कच्ची है ! अरे ! वे क्या बालक हैं जो खो जायंगे !

रामदास — यह तो मैं भी जानता हूं भइया ! पर वह नहीं सुनती ! कहती है—तुम जाओ !

स्त्री—वह मां है, रामदास ! मां का दिल बड़ा पापी होता है ?

रामदास--और तुम क्या हो भाभी ?

दामोदरस्वरूप—अरे रामदास ! यह कम नहीं है। घंटों से गाड़ी की घड़घड़ाहट कानों में गूंज रही है। यह अनिता तो सोते-सोते भी भइया-भइया चिल्ला रही थी (हँसता है)

रामदास—(पिघल कर) भइया ! साल में एक बार तो आते हैं !

[दामोदरस्वरूप आंखें मीच लेता है। रामदास उठकर चला जाता है। अनिता फिर मुँह लपेट कर लेट जाती है। केवलस्त्री (कलावती) उसी तरह बैठी रहतीहै। घड़ी में नौ बजे हैं। वह झुक कर चारपाई के नीचे से एक टोकरा निकाल लेती है। उसमें सूत की कुकड़ियां और अटेरन रखा है।

कलावती चुपचाप सूत अटेरती है]

[पटाक्षेप]

दूसरा दृश्य

[समय संध्याके पांच बजे हैं। वही विशाल भवन। नीचेके एक दालान में कलावती रसोई के प्रबन्ध में लगी है। अशोक अब तक नहीं आया। चिट्ठी आयी है "कि शहरमें अशांति है, हिन्दू-मुस्लिम लड़ाईका भय है। आप लोग चिन्ता न करना हमें बिलकुल डर नहीं है।" पर यहां सब चिन्ता कर रहे हैं। यदु की मां (जगवन्ती) तो रो-रो कर पागल हो रही है। कलावती भी उद्विग्न है। दिल उसका भी धक्-धक् कर रहा है। उसी समय जगवन्ती वहां आती है। वह ४० के लगभग है। रोते-रोते उसका चेहरा फीका पड़ रहा है]

जगवन्ती - तुमने सुना, भाभी! वहां लड़ाई हो रही है। अब क्या होगा?

कलावती—ठीक होगा, जगवंती! कालेज तो शहर से दूर है।

जगवन्ती--तुम नहीं जानतीं भाभी, कालेज दूर होगा पर वे जरूर गये होंगे।

कलावती—तुम आप ही सोच लेती हो कि वे गये होंगे। कालेज वाले क्या उन्हें जाने देंगे?

जगवन्ती—चाहती तो मैं भी हूं कि वे न गये हों पर भाभी, मन नहीं मानता। मैं क्या करूं? (रोने लगती है)

कलावती—(हंसकर) अरे तुम रोने लगी! कितनी कच्ची हो तुम! (रामदास को देखकर) क्या है जी? क्या खबर आई?

रामदास - (बोलते हुए हांपता है) अखबार आया है!

जगवन्ती, कलावती—(एक साथ) अखबार! क्या लिखा है अखबार में?

रामदास— पढ़ता है)......शहर में बहुत जोर का दंगा हो गया है।

कलावती—ओह!

जगवन्ती—कालेज का कुछ नहीं लिखा!

रामदास—(उसी तरह पढ़ता हुआ) नगर कांग्रेस कमेटी दंगा रोकने का प्रयत्न कर रही है। उसने सरकार के साथ सहयोग किया है, लेकिन सब से

बढ़कर कालेज की पार्टी है......।

कलावती, जगवन्ती—(एक साथ कांप कर)—कालेज की पार्टी...

रामदास - (उसी तरह) मानवता के पुजारी १५ नव-युवक पागलों की तरह आगमें बढ़े चले जा रहे हैं। उन्होंने सैकड़ों बेगुनाह आदमियों को मरनेसे बचा लिया है। उनका सरगना एक खूबसूरत और तगड़ा जवान है। उसका नाम अशोक है.......।

कलावती—(कांप कर) अशोक ! मेरा अशोक !!

जगवन्ती—लेकिन यदु का नाम नहीं है। वह जरूर उसके साथ होगा। वह अशोक को नहीं छोड़ सकता।

कलावती—(अनसुना करके) अशोक अब नहीं आयेगा। अशोक का नाम....

[वह बोल नहीं सकती, उसका हृदय उमड़ कर बह पड़ता है]

रामदास—(ढाढ़स के स्वर में) भाभी। रोती हो ! नहीं भाभी, जो पुण्यात्मा है, भगवान् उनकी रक्षा करते हैं।

जगवन्ती—भगवान्।......भाभी मैं कहती थी मेरा दिल घबड़ा रहा है। मैं जानती थी। बेटा मां के दिल ही में तो रहता है। भाभी ! तुम रोती हो, लेकिन मैं क्या करूं...मैं क्या करूं ? (रामदास से) सुनते हो मैं जाऊँगी ! मैं अभी जाऊँगी.......।

रामदास—कहां जाओगी ? वहां के रास्ते बंद हैं !

कलावती, जगवंती—(एक साथ) रास्ते बंद हैं !

रामदास—हां भाभी ! अब तो हमें परमेश्वर से ही प्रार्थना करनी चाहिए।

जगवन्ती—(रोती हुई) परमेश्वर...परमेश्वर... !

कलावती—(हठात् स्वस्थ होकर) रोओ मत, जगवन्ती ! रोना पाप है।

(अनिता का हांपते-हांपते प्रवेश)

अनिता—मां ! क्या भइया लड़ाई में चले गये।

कलावती—(दृढ़ता से) हां बेटी ! तुम्हारे भइया ने यदु के साथ सैकड़ों जाने बचायीं हैं वे सकुशल हैं।

अनिता—(रामदास से) सचमुच क्या चाचा जी ?

रामदास- सच बेटी ! अखबार है तू पढ़ ले न ?

(अनिता अचरज से पढ़ती है । आंखों में पानी भर आता है। जगवन्ती पागलों की तरह उसे देखती है । रामदास भी उमड़ते हुए हृदय से आंसू रोकता है । केवल कलावती मुसकराती है। अनिता एकदम पढ़ना बंद कर देती है ।)

अनिता-चाची तुम रोओ मत । मैं पिता जी से जाकर कहती हूं कि भइया ने बहुत सुन्दर काम किया है ।

(अनिता झपट कर जाती है । कलावती और रामदास भी पीछे-पीछे जाते हैं)

जगवन्ती-(रोती हुई) ये लोग कितने कठोर हैं पर मैं क्या करूं ! जिस दिन अशोक और यदु मुझे आकर प्रणाम करेंगे उसी दिन मैं समझूंगी परमेश्वर ने बड़ा काम किया है । नहीं तो...नहीं...ओह मैं भी क्या करूं !

(वह फूट-फूट कर रो उठती है । परदा गिरता है)

तीसरा दृश्य

(समय प्रातः ८ बजे । स्थान दामोदरस्वरूप का वही कमरा । वे लेटे हैं, तीन ही दिन में उनकी दशा एक जन्मरोगी सी हो गयी । मुख पीला पड़ गया है। उठते-उठते गिर पड़ते हैं । पास ही कलावती बैठी है ।)

दामोदरस्वरूप-रामसेवक पंडित की बात कितनी ठीक हो रही है । बच्चा-बच्चा अशोक का नाम लेता है ।

कलावती-ऐसे पुत्र पाकर हम धन्य हुए। न जाने हमने कितने पुण्य किये होंगे··· ।

दामोदरस्वरूप—मैं चाहता हूं उड़कर उसके पास पहुंच जाऊं और छाया की तरह उसके साथ लगा रहूं (हठात् चौंक कर) कौन ?

(आवाज सुन पड़ती है) मां, पिताजी ! अभी यदु भइया आये हैं । मां···

कलावती और दामोदरस्वरूप—(एक साथ) अनिता ! यदु !!

(अनिता का प्रवेश, वह हांप रही है)

अनिता—मां, पिताजी ! अभी यदु भइया आये हैं। वे कहते हैं, भइया कुशल हैं।

कलावती और दामोदरस्वरूप—(एक साथ) कहां है यदु ? यदु कहां है? (उठने की चेष्टा करते हैं।)

अनिता—नहीं, नहीं, ! आप उठिये नहीं, पिताजी, वे यहीं आ रहे हैं।

(यदु का प्रवेश। जगवन्ती और रामदास भी हैं। यदुनाथ २० वर्ष का सांवला युवक है। उसके हाथ में चोट लगी है पर वह खुश है। सबको प्रणाम करता है।)

कलावती और दामोदरस्वरूप—(एक साथ मिलकर) तुम जुग-जुग जिओ, बेटा ! जीते रहो, बेटा !

दामोदरस्वरूप—अशोक कैसा है, यदु ?

यदुनाथ—सब ठीक है, ताऊजी ! उन्होंने ही मुझे भेजा है कि आप लोग दुखी न हों स्टेशन तक सांथ आये थे। शीघ्र ही शांति होने पर वे भी आवेंगे।

दामोदर स्वरूप—अभी तक लोग लड़ रहे हैं ? कैसे हैं वहां के आदमी !

यदुनाथ—आदमी तो हमारे जैसे ही हैं ? पर कभी-कभी आदमी के भीतर का राक्षस जाग पड़ता है।

रामदास—परमात्मा की लीला है, बेटा! जो वह चाहता है वही होता है।

यदुनाथ—(एकदम तेज होकर) आपके इस परमेश्वर ही ने तो सब अनर्थ किया है। जो परमेश्वर आदमी को आदमी का रक्त पीने की प्रेरणा दे उसे हम नहीं मानते ? इस परमेश्वर ने इतनी सुन्दर पृथ्वी पर इतने भयानक आदमी क्यों पैदा किये......?

रामदास—(सकुचाकर) लेकिन बेटा ! उसकी आज्ञा बिना पत्ता भी नहीं

हिलता। और वह सब भले के लिये करता है।

यदुनाथ—(उसी तरह) यदि वह सब भले के लिये करता है तो क्यों आप लोग पागलों की तरह रोते हो। क्यों नहीं परमेश्वर का विधान मान कर वीर पुरुषों की तरह उत्सव मनाते कि तुम्हारे पुत्रों ने मरती हुई मानवता की रक्षा की है।

दामोदरस्वरूप, रामदास और कलावती—(एक साथ) तुम क्या कहने लगे, बेटा। नहीं–नहीं, बेटा पागल यदु क्या बकने लगा!

जगवन्ती—(रोती–रोती) तू क्या जाने मां-बाप का दिल कैसा होता है?

यदुनाथ—जानता हूं मां! मेरे लिये तुम्हारे प्राण निकल रहे हैं। अशोकको भी तुम चाहती होंगी, पर क्या तुम जानती हो, हमारे साथ और कितने मां के लाल है। उनमें सिक्ख हैं, मुसलमान हैं। उनके लिये क्या तुम्हारी आंखों से पानी का एक बूँद भी टपका? और जाने दो मां, यदि मैं आकर तुमसे कहता—मां! आदमी आदमी के खून से होली खेल रहा है। मैं उसे रोकने जा रहा हूं तो क्या तुम जाने देतीं?

(सब एकदम चुप रह जाते हैं। सन्नाटा छा जाता है)

यदुनाथ—बोलो पिताजी! क्या तुमने हमें कायर नहीं बना डाला? तुम्हारी करुणा, तुम्हारा प्रेम, तुम्हारी विशालता सब स्वार्थ की क्षुद्र सीमा में बँधे हैं।

कलावती—यदु! तुम क्या कहने लगे? तुम्हें किसने बताया कि हम नाराज हैं। हमें तुम पर इतना गर्व है कि छाती फटी जाती है। बेटा! ये प्रेम और अभिमान के आंसू हैं लेकिन कहो तो तुमने क्या किया?

यदुनाथ—(शांत होकर) हमने क्या किया यह हम नहीं जानते। अशोक ने जो कहा वही किया। वे आयेंगे तो सुना देंगे।

कलावती—अशोक सुनावेगा? नहीं यदु! वह भी क्या बोलना जानता है?

यदुनाथ—(नम्र होकर) तुम ठीक कहती हो, अशोक भइया बोलना नहीं जानते। लेकिन ताई! कर्मशील पुरुषों के वाणी होती ही नहीं,

अच्छा ! मैं यही कहने आया था कि हम सब कुशल हैं, आप लोग चिन्ता न करें । मैं अभी जाऊँगा !

जग०. राम०, दामो०, अनि०—(एक साथ) अभी ! अभी जाओगे ! इसी वक्त ! अभी !

यदुनाथ—हां अभी ! अधिक देर नहीं ठहर सकता ! उन लोगों को छोड़ कर क्या मुझे यहाँ बैठना सोहता है ।

जगवन्ती—लेकिन बेटा......!

यदुनाथ—लेकिन-वेकिन कुछ नहीं मां ! मैं जरूर जाऊँगा । तुमने मुझे देख लिया । दूसरे बेटों की माताएँ भी तो तरस रही होंगी ! पिताजी...!

रामदास—(चौंककर) मैं कहता था कि गाड़ी शाम को ......

यदुनाथ—(बीच ही में) यह कैसे हो सकता है, पिताजी ! मैं इसी गाड़ी से जाऊँगा ।

रामदास—(उद्विग्नता को रोककर) अच्छा, अच्छा ! मैं अभी जाता हूँ (एक क्षण रुक कर) मैं कहता था कि मैं भी तुम्हारे साथ चलूँ तो......

जगवन्ती—हां, हां, तुम जरूर चले जाओ ।

यदुनाथ—नहीं पिता जी ! केवल मैं जाऊँगा और अभी आऊँगा । आप अभी तांगा मँगा दीजिए !

(तांगा मँगाने के लिए रामदास जाता है)

यदुनाथ—(हँसकर) इस धर्म ने आदमी का खून पीना सिखाया है । इस ईश्वर ने ही हमको कायर बना दिया है !

जगवन्ती—लेकिन मैं कहती थी तू खाना तो खा ले ।

यदुनाथ—नहीं मां ! (एक क्षण रुक कर) अच्छा ! चलो !

(जगवन्ती जल्दी से चली आती है)

यदुनाथ—(उठकर) —मैं अब जाऊँ?

दामोदरस्वरूप—(अनसुनी करके) यदु बेटा ! क्या सचमुच अशोक का नाम लोग श्रद्धा से लेते हैं ?

यदुनाथ—हां ताऊजी ! अशोक भइया ने वह काम किया है जो बड़ी-बड़ी आत्माएँ नहीं कर सकतीं।

दामोदरस्वरूप—सचमुच तुम ऐसा समझते हो यदु !

यदुनाथ—मैं कहता हूँ अशोक भइया सदा के लिए अमर हैं।

दामोदरस्वरूप—(गद्‌गद् होकर) तुम जुग-जुग जीओ, बेटा ! (एक क्षण रुक कर) कुछ भी हो दुनिया कहेगी दामोदर गरीब था लेकिन सन्तान के प्रति उसने अपना कर्तव्य पूरा किया ।

(तभी रामदास की आवाज सुनाई देती है—'यदु ! तांगा आ गया है, यदु उठता है। अनिता और कलावती भी उठती हैं)

यदुनाथ—नमस्कार ताऊजी !

दामोदरस्वरूप—परमात्मा तुम्हें कुशल से रखे, बेटा ! तुम जल्दी लौट आना।

(कलावती उसे छाती से भर कर माथा चूम लेती है। आंखों में पानी भर आता है ! यदु चुपचाप बाहर निकल आता है। केवल अनिता साथ आती है)

अनिता—यदु भइया ! तुम उन सबसे कहना कि तुम्हारी बहिन अनिता को तुम जैसे भाइयों पर बड़ा गर्व हो रहा है। वहां से लौटो तो एक बार यहां अवश्य आना—मैं बाट देखूंगी, अच्छा ?

(अनिता बड़ी शीघ्रता से यह सब कुछ कह गयी। उसकी आंखें भर आयीं पर वह मुस्करा उठी। यदु उसे कुछ कहे कि वह झपट कर लौट गयी वह देखता ही रह गया।)

(पटाक्षेप)

चौथा दृश्य

[वही विशाल भवन ! वही दामोदरस्वरूप का कमरा, अब उसमें केवल एक चारपाई है। उस पर उनका एकमात्र बेटा अशोक लेटा है। उसे

खूब तेज बुखार चढ़ा है। उसके सिर, हाथ और पैरों पर पट्टियाँ बँधी हैं! पट्टियों पर जगह-जगह लहू चमक आता है। उसकी आंखें बन्द हैं।

दामोदरस्वरूप कुण्ठित, मलिन उसके सिरहाने की तरफ फर्श पर बैठे हैं। कलावती पागल-सी बेटे को देख रही है। अलग कोने में अनिता है जो क्षण में गम्भीर और क्षण में द्रवित हो उठती है!

फर्श पर दामोदर के पास रामदास, जगवन्ती, यदु और पांच छः नवयुवक बैठे हैं। वे सब दुःख और सुख के फांसे अशोक की ओर देख रहे हैं;

डाक्टर भी है। वह गौर से अशोक की परीक्षा कर रहा है]

डाक्टर—(गम्भीर होकर) मैं इन्हें होश में ला सकता हूं परन्तु....।

दामोदरस्वरूप—परन्तु क्या डाक्टर साहब।

डाक्टर—मैं कहता था रात गुजर जाती तो ठीक था।

दामोदरस्वरूप—डाक्टर साहब! मैं गरीब हूं पर अशोक के लिए जो कहोगे वही करूँगा। जो मांगोगे वही दूँगा। दुनिया नहीं कह सकेगी कि दामोदर बेटे के लिए कुछ करने में झिझका था।

डाक्टर—नहीं! मैं यह नहीं सोचता। अशोक के लिए मैं कुछ कर सका तो धन्य हूँगा।

एक युवक—डाक्टर! मुझे अचरज है, भइया के प्राण कहां अटके हैं।

दूसरा युवक—ये अकेले ही तो स्टेशन से लौट रहे थे कि पांच सौ मजहबी दीवानों ने घेर लिया।

तीसरा युवक—डाक्टर! जिसने सैकड़ों जानें बचाई उसका यह अन्त!

(सहसा अशोक आंखें खोल लेता है)

अशोक—(क्षीण स्वर में) मां!

कलावती—(अतिशय गद्‌गद् होकर) हां बेटा!

अशोक—कौन रोता था, मां! तुम रोओ नहीं। मैं अच्छा हो जाऊँगा और न भी हुआ तो भी तुम रोना मत, एक के बदले असंख्य अशोक

तुम्हें मिलेंगे, मां ?

कलावती—मैं नहीं रोती, बेटा ! मैं रोऊँगी क्यों ?

अशोक—अनिता कहां है ?

अनिता—(चौंककर) भइया।

अशोक—अनिता ! तूने बुलाया था न ? हम आये हैं, क्या कहती है तू ? आरती करनी होगी ? जा बुला ला अपनी सखियों को और अपने जी की निकाल ले .... !

[अशोक फिर आंखें बन्द कर लेता है। देश के प्रसिद्ध नेता डाक्टर अमृतराम प्रवेश करते हैं ।]

अमृतराम—कहां है, अशोक ?

दामोदरस्वरूप—(उठकर) इधर है इधर । आप, आप यहां आइये (प्रफुल्लित होकर) अब डर नहीं है। आप आये हैं। परमेश्वर ने आप को भेजा है आप जरूर अशोक को बचा लेंगे।

अमृतराम—आप अशोक के पिता हैं ?

दामोदरस्वरूप—(गर्व से) जी हां ! मैं अशोक का पिता हूं। वह मा है; वह बहिन अनिता है। मैं अशोक के लिए कुछ भी उठा न रखूंगा !

[अमृतराम गम्भीर होकर अशोक की जांच करते हैं। उनका चेहरा चिंतित हो जाता है।]

अमृतराम—अच्छा हो यह रात शांति से बीत जाय।

अशोक—पिताजी ! (अशोक आंखें खोल देता है)

दामोदरस्वरूप—तुम बोलो मत, बेटा !

अशोक—यदु कहां है ?

यदुनाथ—(आगे बढ़कर) मैं यहां हूं।

अशोक—तुम जानते हो यदु, हमने क्या प्रतिज्ञा की थी ? मेरे मां-बाप को मालूम न होने देना कि अशोक अब दुनिया में नहीं है।

यदुनाथ—(चुपचाप नीची गरदन करके आंसू टपकाने लगता है) तुम

ऐसा क्यों कहते हो अशोक !

(अशोक नहीं बोलता । सब फिर चिन्तातुर होकर एक दूसरे को देखते है)

अमृतराम—(हठात् चौंक कर) पक्षी उड़ना चाहता है !

कलावती, दामोदरस्वरूप, अनिता—(घबराकर एक साथ) क्या आ-आ

रामदास, जगवन्ती— (एक साथ) आप देखिए तो डाक्टर साहब !!

अमृतराम—(सिर हिलाकर) देख तो रहा हूं, खेल समाप्त हो चुका है। एक दिव्यात्मा पृथ्वी पर उतरी थी आज लौट गयी !

(सब हठात् पिघल उठते हैं। कलावती हा-हा करके अशोक से लिपट जाती है। जगवन्ती उसे सम्हालती है)

दामोदरस्वरूप—(सहसा जाकर) क्या करती हो कलावती ! रोती हो ! अशोक ने कहा था रोना मत, और तुम अशोक की बात टालती हो ।

(कलावती नहीं सुनती । उसकी छाती फट गयी है, उसकी वाणी कमरे, दिवारों को कंपा देती है । सब सोये हुए से उठते हैं। अमृतराम बाहर निकल जाते हैं)।

कलावती—[बिलखती हुई] मैं मां हूं मां । मेरा सिर, मेरा मांस······

दामोदरस्वरूप—लेकिन मैं बाप हूं। अशोक का बाप हूं। अशोक वीर पुत्र था। मै वीर पुत्र का वीर बाप बनूंगा ! सुनो यदु, रामदास अनिता, अनवर, शमशेर, राजेन्द्र ! तुम सब सुनो। मुझे अशोक पर गर्व है ! मैं दुनिया को कहने का मौका न दूंगा कि अशोक जैसी महान और दिव्य आत्मा का पिता दामोदरस्वरूप रोया था। मैं हंसूंगा।

[सचमुच दामोदरस्वरूप बड़े जोर से हंस पड़ता है]

अनिता—(जोर से रोकर) पिताजी ! पिताजी !

दामोदरस्वरूप—(अनिता को छाती में भर कर) अशोक की बहिन होकर रोती हो ! तुझे अशोक चाहिए न ? देख कितने अशोक हैं। यदु, अनवर आदि आदि सब तेरे अशोक हैं और अनिता यह भारत और यह विश्व अनेक अशोकोंसे भरा पड़ा है, फिर तू क्यों रोती है ?

[दामोदरस्वरूप फिर हँस पड़ते हैं। सब युवक हतप्रभ उस दुबले-पतले अधेड़ पुरुष के साहस को देखते हैं। सहसा यदु आगे बढ़ कर कलावती को उठा लेता है)

यदुनाथ—मां! तुम हम सब की मां हो! हमें आशीर्वाद दो, मां! भारत के समस्त पुत्र अशोक के पद-चिन्ह पर चल सकें।

शम०, रामदास, अनिता, और अनवर--(एक साथ बोलते हैं)

"मां! हम मानव के रक्त को व्यर्थ न जाने देंगे।

मां! मानव--रक्त से हम नयी मानवता को जन्म देंगे।

मां! हम सारे हिन्दुस्तान में अशोक ही अशोक पैदा कर देंगे!

मां! तुम नये हिन्दुस्तान की मां हो!"

[सहसा कलावती उठ कर उन्हें देखती है। उसकी आंखें चमक उठती हैं। दामोदरस्वरूप धीरे-धीरे अशोक के बालों में उँगली फेरते हैं। अमृतराम अन्दर आते हैं।)

अमृतराम—बाहर अपार जनता है यदु! अशोक को ले चलो!

दामोदरस्वरूप—(उठकर) चलिए डाक्टर साहब हम तैयार हैं!

(और वे स्थिरगति से बाहर चले जाते हैं। उन्होंने कुहनी उठाकर आंखें पोंछ ली हैं। रामदास उनके पीछे जाता है। उसकी आंखें गीली हैं।)

(परदा गिरता है)

---

३ सूरज की किरणों

पात्र—हरीश। सुनन्दा—हरीश की मां।

गोमती—हरीश की विधवा बहन। कमला—हरीश की छोटी बहन।

प्रतिमा। एक नौकर।

[जनवरी १६ और १७। समय संध्या और प्रातः]

प्रथम दृश्य

[एक साधारण गिरस्ती का ऊपर बैठने का कमरा। प्रवेश करने के लिये उसमें एक ही दरवाजा है। दरवाजे के सामने तीन बड़ी खिड़कियां हैं, जिनमें से सामनेके मकान और ऊपर आस्मानमें तारिकाओं सहित चद्रमा दिखाई दे रहे हैं। कमरे में तीन बड़ी तस्वीरें लगी हैं। इनमें दो महापुरूषों की हैं और तीसरी एक बहुत सुन्दर सीनरी है। नदी पर पानी पीते हुये एक पक्षी का बच्चा दूर चला गया है। मां करुण और भयभीत दृष्टि से पीछे मुड़कर पुकार रही है। बच्चा दूर एक कोने में बैठा है। कमरे के उत्तर में लिखने की एक सुन्दर मेज है, उस पर लैम्प के सामने बैठा हुआ हरीश कुछ अनमना-सा लिखने की चेष्टा कर रहा है। बगल के रैक में बहुत सी पुस्तकें और पत्र हैं। कुछ पत्र दीवारों पर टँगे हैं। हरीश हिन्दी का प्रसिद्ध लेखक है। डेस्क पर रखी हुई रिस्टवाच में ७ बजे हैं।]

हरीश (पुकारता है)—मां! (एक क्षण रुककर) मां... !

[आवाज आती है—आ रही हूँ, बेटा! और दो-तीन मिनट बाद सुनन्दा प्रवेश करती हैं। वह लगभग चालीस वर्ष की एक गम्भीर स्त्री हैं। सरदी के कारण उन्होंने चादर ओढ़ी है।]

सुनन्दा—क्या है, हरीश ?

[वह बीच की खिड़की छोड़कर दोनों खिड़कियां बन्द कर देती है।]

हरीश—मां!......

सुनन्दा—हां, क्या कहते हो ? [वह एक कुर्सी पर बैठ जाती है]

हरीश—मुझे बहुत दुःख हो रहा है, मां! मैं क्या करूं ?

सुनन्दा—तुम्हारे दुःख को जानती हूँ, बेटा! पर मैं भी क्या करूं ?

हरीश—तुम ऐसे क्यों कहती हो, मां! तुम सब कुछ कर सकती हो!

सुनन्दा—नहीं, हरीश नहीं! मैने दुनिया देखी है। मैं इतना पाप न करूँगी।

हरीश—पाप!

सुनन्दा—हां, पाप ही तो है। अपनी गिरस्ती में एक पापात्मा को लाकर

क्या मैं पाप की बेल न लगाऊंगी, हरीश ? तुम लोग पढ़-लिखकर क्या ये ही बातें सीखते हो ? लज्जा और शील का दूसरा नाम नारी है। जिसके पास ये नहीं हैं, वह नारी कैसे हुई ? यह मैं नहीं जानती।

हरीश—मां !!

सुनन्दा—तू कहता है न कि उसका कसूर नहीं है। लेकिन मुझे उससे क्या ? खरबूजे पर चाकू चला या चाकू पर खरबूजा गिरा, दोनों बातें बराबर हैं। खरबूजा तो कट चुका है।

हरीश—मां ! तुम सुनो तो !

सुनन्दा—क्या सुनूं, हरीश ! तुम मेरे एकमात्र बेटे हो। तुम्हें मैं कितना प्रेम करती हूँ, तुम नहीं जानते। तुम्हें देखकर ही जीवन का भार सह रही हूँ। नहीं तो...

(सुनन्दा रोती है)

हरीश—[बहुत नम्र होकर] मां ! तुम रोती हो। न, मां ! रोओ मत। नहीं तो मैं भी रो पड़ूंगा। तुम्हारा बेटा हूँ। पर मां...!

सुनन्दा—पर क्या ?...

हरीश—कुछ नहीं मां...!

सुनन्दा—नहीं हरीश। तू कह जो कुछ कहता है, मैं तुझे रोकूंगी नहीं पर...।

हरीश—ओह ! यह पर...?

सुनन्दा—(स्वस्थ होकर) सुन हरीश ! तेरे लिए मैं सब कुछ कर सकती हूँ, पर प्रतिमा को अपने घर नहीं ला सकती।

(हरीश कांप उठता है। उसका मुख पीला पड़ जाता है।)

हरीश—मां ! तुम निश्चय से कहती हो ?

सुनन्दा—हां !

हरीश—तब कुछ नहीं कहूँगा, मां तुम जाओ।

(हरीश यह कह कर डेस्क पर सिर झुका लेता है और रो पड़ता है)

सुनन्दा—(घबराकर) हरीश, हरीश ! तुम रोने लगे बेटा !

[पास आकर उसे दोनों हाथों में भर लेती है । हरीश छुड़ाता है]

हरीश—जाओ, मां !

(सुनन्दा बोलती नहीं ! केवल उसका सिर छाती में भर लेती है)

हरीश—(कांपता है) मां ! तुम्हारी बात लांघने की मुझ में शक्ति नहीं है । मैं तुम्हारा बेटा हूँ पर...पर...

सुनन्दा—जानती हूँ, बेटा !

(चुपचाप आंसू पोंछती है)

हरीश—तुम कुछ नहीं जानती, मां ! (सहसा तेज होकर) मां ! अगर तुम जानती होतीं ..अगर ।

सुनन्दा—जानती हूं बेटा ! कि तुम्हारा हृदय टुकड़े-टुकड़े हो रहा है और तुम्हारे मन में आत्महत्या करने का विचार भी उगता आ रहा है ।

हरीश—(चौंक कर) मां...।

सुनन्दा—(हंसती है) तुम्हारी मां ने अपने बाल धूप में सफेद नहीं किये हैं । इस छाती के भीतर एक युग का इतिहास संचित है, पर हरीश ! जीवन में भावना का स्थान कहां है ? भावना के ऊपर कर्त्तव्य है । कर्त्तव्य वही हैं जिसे समाज और धर्म स्वीकार करते हैं । तुम जानते हो मैं प्रतिमा को कितना प्रेम करती हूँ लेकिन...लेकिन...

हरीश—तुम राक्षसी हो, मां !

सुनन्दा—(आंसू पोंछकर) हां, हरीश ! यहीं मानव राक्षस भी होता है । मानव ही क्यों ? समस्त संसार का संचालन करनेवाला भी अनन्त हत्याओं का श्राप लिए बैठा है । इस मिट्टी में स्पन्दन पैदा करके एक दिन वह जीवन का निर्माण करता है और फिर एक दिन इसी स्पन्दन का हरण करके मृत्यु की विभीषिका उपस्थित कर देता है । जीवन और मृत्यु, देवता और राक्षस, ये सब कर्त्तव्य के एक ही सूत्र में बँधे हैं, हरीश !

हरीश—और मां तुम पाप और पुण्य को क्यों भूल जाती हो ?

सुनन्दा—भूलती नहीं, बेटा ! परन्तु जीवन और मृत्यु को एक मानकर भी मृत्यु को कौन चाहता है ? प्रेम तो जीवन ही है ।

हरीश—यह कमजोरी है, मां !

सुनन्दा—हो सकती है । तुम जानते हो कानखजूरा एक जानवर होता है। वह जब शरीर पर पैर गड़ा देता है तो उतरता नहीं । मस्तिष्क में प्रवेश कर जाता है तो जीवन लेकर छोड़ता है । कमजोरी भी कानखजूरे की तरह है ।

हरीश—ओह, मां ! तुम इतना जानती हो और फिर भी कहती हो प्रतिमा पापिन है ! मां तुम क्या हो ?

सुनन्दा—मैं स्वयं नहीं जानती क्या हूँ। पर इतना जानती हूँ कि मेरा धर्म प्रतिमा को पाप से मुक्त नहीं करता ।

हरीश—और मैं भी कहता हूँ, मां ! प्रतिमा बड़ी अभागिन है, उससे पाप बन पड़ा है, पर मां ! पाप करनेवाले को पापी कहकर ही तो उसका उद्धार नहीं हो जाता । यह तो उसे पाप करने के लिए और भी उत्साहित करना है।

सुनन्दा—क्या कहते हो, बेटा ? उत्साहित करना है... ।

हरीश—हां, मां ! उसके लिए और रास्ता ही क्या है ? या तो वह आत्म-हत्या कर ले, या पाप की मण्डी में यौवन का मोल-तोल करे ।

सुनन्दा—हरीश...!

हरीश—ठीक तो कहता हूँ, मां ! क्या यह सब पाप नहीं है ?

सुनन्दा—है बेटा ! पर...पर मैं प्रतिमा को अपनी बहू नहीं बना सकती।

हरीश—ओह, मां ! तुम इतनी उतावली क्यों हो ?

(नौकर का प्रवेश)

नौकर—मां जी !

सुनन्दा—क्या है ?

नौकर—मां जी ! गणेशबाबू की लड़की आई हैं ।

सुनन्दा—(चौंक कर) प्रतिमा !

नौकर—जी हां !

(सुनन्दा शीघ्रता से चली जाती है। हरीश अचरज से देखता है)

हरीश—(आप ही आप) प्रतिमा आई है। इस समय। क्यों?

(हरीश आकर खिड़की पर खड़ा हो जाता है और चन्द्रमा को देखता है। फिर बोलता है मानो चन्द्रमा से बातें करता हो।)

हरीश—चन्द्र! सुनता हूँ तुमने अनेक पाप किये हैं। अनेक तारिकाओं को लिए तुम निर्द्वन्द घूमते रहते हो। क्या तुम प्रतिमा को कोई रास्ता नहीं सुझा सकते? (कुछ रुक कर) नहीं। तुम पुरुष हो। और पाप करना पुरुष का कर्तव्य है। और अभागे पुरुष! तुम्हारे पापों की छाया तो इतनी लम्बी है कि तुम स्वयं इससे छिप जाते हो! तुम कुछ नहीं कर सकते।

[खिड़की बन्द कर देता है]

लेकिन कुछ रास्ता तो निकालना ही होगा। प्रतिमा के पाप को पीना ही पड़ेगा, नहीं तो उसका जीवन नष्ट हो जायगा और पाप की इतनी लम्बी छाया समाज पर पड़ेगी कि यह समूचा समाज उसके भीतर घुट-घुटकर मर जायगा।

(कमरे में टहलने लगता है)

समाज! समाज!! इसे नष्ट होना ही चाहिए। यह इतना नहीं जानता कि व्यक्ति के प्राण लेकर वह स्वयं अपना ही गला घोंटता है। बेचारा कैसे जाने? सहस्रबाहु की तरह इसके करोड़ों जीवन हैं। इसका ध्वंस करने के लिए मातृ-हन्ता परशुराम की जरूरत है।

(उत्तेजित होकर तेज चलता है)

मातृ-हन्ता! हां, मातृ-हन्ता! मेरे रास्ते में भी तो मां है! मां—जिसे मैं प्यार करता हूँ। जिसकी बात मैं लांघ नहीं सकता।

[रुक कर]

मां को कौन प्यार नहीं करता? परशुराम भी करते थे। मां के कहने पर ही तो उन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन किया था। क्षत्रिय! हां, सत्ता की मदान्ध मूर्तियां! लेकिन अवसर आया उसी मां को परशुराम ने मार डाला।

(विकल होकर)

मां को मार डाला। मां को ! क्योंकि वह मानता था कि कर्त्तव्य का स्थान भावना से ऊपर है। और मां भी कहती थी कि कर्त्तव्य का स्थान भावना से ऊपर है। पर यह कर्त्तव्य ! ओह ! इस कर्त्तव्य के तो अनेक रूप हैं।

[सहसा चौंक उठता है, रोने की ध्वनि सुन पड़ती है]

हरीश—कौन रोता है ? (रुक कर) प्रतिमा – प्रतिमा रोती है...।

[हरीश विकल होता है, आंखों में आंसू आ जाते हैं]

हरीश—रोओ प्रतिमा ! तुम रोने के लिए हो ! तुम रोओगी तभी तो दुनिया हँसेगी ?...

[हरीश विकल हो उठता है। वह डेस्क पर सिर रखकर बैठ जाता है। फिर फूट-फूटकर रो उठता है। पड़ोस की घड़ी धीरे धीरे आठ घन्टे बजाती है। परदा गिर जाता है]

दूसरा दृश्य

[उसी मकान में नीचे का भाग। चौक के सामने खुला हुआ दालान है। उसमें गिरस्ती का सामान करीने से लगा है। दीवार पर एक छोटा लैम्प है, उसकी रोशनी धीमी, पर साफ है। पश्चिम की ओर एक पलंग बिछा है। उसी पर सुनन्दा बैठी है। उसकी गोदी में प्रतिमा सुबक-सुबककर रो रही है। प्रतिमा सोलह सत्रह वर्ष की सुन्दर लड़की है। युग का फैशन उसे फबता है। उसका मुख बहुत बुरी तरह पीला पड़ गया है। आंखें रोने के कारण लाल हो रही हैं। वह बोलती नहीं, केवल रोती है, रोये चली जाती है]

सुनन्दा—बेटी ! प्रतिमा रोओ मत......।

प्रतिमा—मा मा मा...मा आ·आ...(सुबकती है)

[सुनन्दा प्रतिमा को जोर से छाती में भर लेती है और उसका मुंह ऊपर को उठाकर उससे आंखें मिलाती है। सुनन्दा स्वयं रो-सी पड़ती है]

सुनन्दा—अब न रोओ, बेटी !

प्रतिमा—(स्वस्थ होने की चेष्टा करती हुई) मां...।

सुनन्दा—बेटी !

प्रतिमा—तुम्हें प्रणाम करने आई थी, मां ! अब जा रही हूं.... ।

[चरणों में गिर पड़ती है । सुनन्दा उठाती है ।]

सुनन्दा—कहां जा रही हो बेटी ?

प्रतिमा—जहां भाग्य ले जाय, मां !

[कमला का प्रवेश । वह अठारह उन्नीस साल की सुन्दर लड़की है । उसने खद्दर की नीली साड़ी पहनी है । उसकी मांग में सिन्दूर, माथे पर बिन्दी है, पर उसका सुन्दर मुख फीका है]

कमला—मां ! प्रतिमा !!

सुनन्दा—क्यों कमला ?

कमला—मां ! मैंने सुना है प्रतिमा जा रही है । अब न लौटेगी, कभी न लौटेगी...।

सुनन्दा—(हठात् चौंककर) कौन कहता है ?

कमला—सभी कहते हैं, मां ! वे कहते हैं प्रतिमा ने बहुत बुरा किया है, पर मा गलती सब हीं से हो जाती है। सभी तो जीजी की तरह महान नहीं है...... ।

सुनन्दा—तुम क्या कह रही हो, बेटी ?

कमला—मैं कुछ भी तो नहीं कहती मां ! भैया कहते थे कि वे प्रतिमा...।

सुनन्दा—(जोर से) कमला आ... ।

कमला—मैं ठीक कहती, हूं मां !

प्रतिमा—(चौंककर) मैं जाती हूँ मां ! तुम मुझे भूल जाना ।

[प्रतिमा रोने लगती है। सुनन्दा गम्भीर है । वे प्रतिमा के साथ उठती हैं]

सुनन्दा—प्रतिमा ! जाती हो, अच्छा ! अपनी मां से कहना जाने से पहले एक बार मुझसे मिलें ।

[प्रतिमा अचरज से कांपती है । फिर धीरे धीरे चली जाती है । किवाड़ बन्द होने की आवाज होती है । साथ ही किसी के बोलने का स्वर भी सुन पड़ता है । सुनन्दा और कमला चौंकती हैं]

स्वर—प्रतिमा ! मैं कहती हूं, डरो मत ! तुम्हारा अकल्याण नहीं होगा !

कमला—
सुनन्दा— } (एक साथ) जीजी !—गोमती !

[गोमती का प्रवेश। वह पच्चीस वर्ष की युवती विधवा है। सरदी है फिर भी उसने सिर्फ एक सफेद धोती पहनी है। वह बहुत गम्भीर है]

गोमती—क्या है मा !...कमला !

कमला—तुमने प्रतिमा से कहा, जीजी ! कि तुम्हारा अकल्याण नहीं होगा !

गोमती—हां, कमला ! उसका अकल्याण नहीं होना चाहिए ! उसका क्यों किसी का भी नहीं होना चाहिए ?

सुनन्दा—लेकिन गोमती ! तुम जानती हो प्रतिमा ने कितना बड़ा पाप किया है ? वह गर्भवती......।

गोमती—जानती हूं, मां ! पर यह भी जानती हूं कि जिस प्रतिमा ने पाप किया है, वह पुण्य भी कर सकती है।

सुनन्दा—गोमती !

गोमती—मां। किसी को भूख लगती है तो वह चोरी भी करता है। उसकी भूख मिटा दो, वह चोरी नहीं करेगा। प्रतिमा के पाप से तुम सब इतना डरते हो तो क्यों उसकी भूख जगाई गई ? क्यों उसे ऐसी दुनिया में निर्द्वन्द घूमने दिया गया? मां ! जिसे तुम पाप कहती हो, वह पाप नहीं परिणाम है !

सुनन्दा (प्रभावित होकर]—तो अब क्या होगा गोमती ?

गोमती(हँसती है)—अब क्या होगा ? अब वही होगा, जो होना चाहिये। दुनिया में महात्माओंकी कमी नहीं है ; और महात्माओंकी यही विशेषता है कि वे ऐसे पापियों पर मुक्त-हस्त से पुण्य की वर्षा किया करते हैं।

[लौट चलती है]

सुनन्दा—जरा ठहरो, गोमती ! तुम मेरी बेटी हो, पर तुम्हें देखकर मेरी आँखें झुक जाती हैं। तुम इस दुनिया से ऊपर हो।

गोमती—मां... !

सुनन्दा— सच बेटी ! तुझसे झूठ नहीं बोलूँगी, पर बेटी... !

गोमती— क्या कहती हो, मां ! विश्वास रखो मैं तुम्हारे रक्त मांस का ही एक अंग हूँ ?

सुनन्दा—सो तो जानती हूँ, पर तू कहती थी न, हरीश चाहता है कि... !

[वह आगे नहीं बोल सकीं। कमला काँपती है]

गोमती--मां ! हरीश चाहता है कि वह प्रतिमा से विवाह करले!

सुनन्दा (कांप कर) हां ।

गोमती--मां अगर हरीश ऐसा चाहता है तो उसे प्रतिमा से विवाह कर लेना चाहिये। जिन व्यक्तियोंमें आदमी के प्रति घृणा नष्ट हो जाती है, वे आत्माएँ दिव्य होती हैं मां !

[गोमती चली जाती है]

सुनन्दा (उद्विग्न है) यह तुमने कहा, गोमती ! तुमने ! तुम झूठ नहीं कहोगी, पर गोमती.......।

[सुनन्दा रोती है]

कमला (करुण है)—मा... !

सुनन्दा—कमला बेटी ! तुम सब ही इसे ठीक समझते हो, पर मैं क्या करूं ? मेरा धर्म, मेरे कुल-देवता मुझे आज्ञा नहीं देते ।

कमला--मा ! जीजी की बात पर तुम्हें विश्वास नहीं आता ।

सुनन्दा--आता तो है, पर... ।

कमला--यह 'पर' तो किसी को जीने नहीं देगा, मा ! मैं तुमसे एक बात पूछती हूँ।

सुनन्दा (स्वस्थ होकर) पूछो बेटी !

कमला— माँ ! तुम स्त्री हो ! एक दिन प्रतिमा की तरह तुम भी जवान रही होगी ! तुम्हारे मन में भी उमंगें उठती रही होंगी ! तुम्हारे जी में भी किसी से... किसी से... !

सुनन्दा (काँप कर) कमला, कमला !

कमला— क्षमा कर दो, माँ ! बेटी होकर ऐसी बात पूछती हूँ ; पर इस मा-बेटी के सम्बन्ध से परे भी हम कुछ हैं। उस कुछ में तुम्हारा और मेरा सम्बन्ध बराबर है। उसी संबन्ध के नाते पूछती हूँ, माँ ! क्या तुम्हारे मन में कभी अकेलापन नहीं खला था।

सुनन्दा— बेटी... !

कमला— कहो माँ !

सुनन्दा— कुछ नहीं, बेटी ! कुछ नहीं कहूँगी ! तुम सब ने मुझे पागल बना डाला है। मुझमें इतना सहने की हिम्मत नहीं है, कमला ! तुम जाओ। मैं एकान्त चाहती हूँ।

कमला—माँ...!

सुनन्दा—जाओ कमला...!

[कमला क्षण-भर मां को देखती है। फिर शीघ्रता से ऊपर चली जाती है। उसके जूतों की खड़-खड़ धीरे-धीरे मन्द पड़ती है। सन्नाटा छा जाता है। सुनन्दाउ सी तरह उसी स्थान पर बैठी रहती है। दीवार में लगे हुये लैम्प की धीमी रोशनी हवा से काँपती है। दूर कहीं घँटा बज उठता है। सुनन्दा चौंककर गिनती है एक, दो, तीन, चार इत्यादि... । हर बार उसकी छाती गिरती उठती है। नौ बजते हैं। परदा गिर जाता है।]

तीसरा दृश्य

[स्थान—हरीशकी बैठक। समय प्रातः आठ बजे हैं। नीचे नौकर खड़-खड़ कर रहा है। चूल्हे का धुँआ ऊपर उड़कर कुहरे में मिल गया है। चारों तरफ अँधेरा-सा छाया हुआ है। ऊपर की डोल पर कहीं-कहीं धूप चमक उठी है। हवा बन्द है। हरीश उठ चुका है और कपड़े पहन रहा है। उसके चेहरे पर दृढ़ता है। वह अस्फुट् स्वर में आप ही आप बोल रहा है।]

हरीश— (कोट पहनते-पहनते)—मैं डरूँगा नहीं। यह पाप है, डरना पाप है। माँ धर्म और कुल-देवता से डरती है। वह सब ढोंग है। जो निर्भय

हैं, वे पाप नहीं कर सकते, कभी नहीं कर सकते ।

[कुरसी खींचता है]

मैं उनके पास जाऊँगा और कहूँगा—तुम प्रतिमा को अपने से दूर करना चाहते हो, उसे मुझे दे दो । उसका पाप मैं ओढ़ लूँगा । समाज मुझ पर चोट करना चाहेगा तो मैं छाती खोलकर खड़ा हो जाऊँगा । फिर....फिर तो...

[हँसता है]

फिर तो समाज भाग जायगा, क्योंकि मैं डरूँगा नहीं; क्योंकि जो डरता नहीं, वह पाप भी नहीं कर सकता । पाप तो उस युवक का है जिसने ..। प्रतिमा भी अद्भुत लड़की है । कहती है—वह नहीं चाहता तो उसका नाम नहीं बताऊँगी । वह कायर हैं । कायर...

[जूते निकालकर पहनता है]

लेकिन माँ भी तो कायर है । उसके धर्म और कुल-देवता उसे कायर बना रहे हैं......।

[सुनन्दा का प्रवेश । वह उसी तरह गम्भीर है । हरीश को जाने को तैयार देखकर चौंकती है]

सुनन्दा—तू जा रहा है ? कहाँ रे ?

हरीश—[दृढ़ता से] प्रतिमा के पास ।

सुनन्दा—(चौंककर) प्रतिमा के पास ।

हरीश—हाँ माँ ! मैं प्रतिमा के पास जाऊँगा और कहूँगा—तुम्हारे कारण तुम्हारे कुल की बदनामी होती है । तुम इसे छोड़कर चली जाओ...।

माँ—उसे तू कहाँ चली जाने को कहेगा, बेटा !

हरीश—कहता तो हूँ, मां ! मैं उसे कहूँगा तुम इस समाज को भी छोड़ दो......।

मां—[कांपती है] ओह ! तू उसे आत्महत्या करने को कहेगा ।

हरीश—नहीं मां !

मां—तो !

हरीश—मैं उसे अपने साथ चलने को कहूँगा ?

सुनन्दा [और चौंककर]—अपने साथ ? कहाँ हरीश ?

हरीश—कहा तो मां ! जहाँ यह कुल और समाज न होंगे। जहाँ केवल प्रतिमा होगी और होगा हरीश।

[सुनन्दा बड़े वेग से सिहरती है। उसकी आँखें भर आती हैं]

सुनन्दा—तू मुझे छोड़ देगा, हरीश ! तू अपनी मां को छोड़ देगा ?

हरीश—[अपने को रोकने की सफल चेष्टा करते हुए] कर्तव्य का स्थान भावना से ऊपर है, मां ! यह तुम्हारी शिक्षा है ! मैं क्या करूँ जब तुम्हारे और मेरे कर्त्तव्यों में इतना अन्तर है।

[सुनन्दा रो पड़ती है। हरीश चुपचाप मां को रोते देखता है]

सुनन्दा—तू नहीं जानता। तू जान भी कैसे सकेगा ? मा के हृदय को मां स्वयं नहीं जानती। पर कहती हूँ रात भर नहीं सोई।

हरीश—सो तो जानता हूँ।

[कमला का प्रवेश। वह चुपचाप आकर खड़ी हो जाती है]

सुनन्दा—नहीं जानता, बेटा ! तू कुछ नहीं जानता ! अगर जानता होता...। हरीश सब कुछ जानता हूँ, मां ! मेरे लिए तुम जान दे सकती हो, पर प्रतिमा को घर नहीं ला सकतीं। और मां ! मुझे प्रतिमा और घर के बीच में एक को चुनना है।

सुनन्दा	एक साथ	—हरीश !
कमला	चौंक कर	—भइया !

हरीश-मैं भी रात भर नहीं सोया मां ! सोता भी कैसे ? अँधेरे में भटकता रहा। लेकिन जब धीमा धीमा प्रकाश उगने लगा था; जब दूर जंगल में गीदड़ बोल चुके थे और पक्षियों की नींद उचाट हो गई थी तो...।

कमला—तो भइया...!

हरीश—तो मैंने देखा हमारे आले में रहनेवाली चिड़िया उड़ गई। घर छोड़कर चली गई। मैंने भी सोचा मैं भी घर छोड़कर चला जाऊँ तो ठीक

रहेगा। तब मां के कुल-देवता नहीं रहेंगे।

सुनन्दा—[कांपकर] हरीश ! तू घर छोड़कर जायगा तू...।

[रो पड़ती है]

कमला—[कांपकर] भइया ! तुम इतने निष्ठुर हो ! मां को छोड़ने की बात कहते हो ? नहीं।

[वह भी रो पड़ती है]

हरीश—[उसी तरह दृढ़ है] लेकिन मां ! बिल्कुल नहीं जाऊँगा ! इतनी हिम्मत मुझ में नहीं है। अपनी मां का बेटा हूँ। प्रतिमा के लिए नया घर बसाऊँगा, और जब सन्ध्या का अन्धकार बढ़ा आ रहा होगा। जब समस्त संसार आराम की गोदी में लेटने को पागल-सा लौट रहा होगा: तब मैं भी पागल-सा अपनी मां की गोदी में लेटने को चला आऊँगा।

[हठात् गम्भीर हरीश की आंखों में दो बूँद आँसू चमक उठते हैं। वह चौंकता है।]

मैं भावुक हूँ, माँ ! लेखक सभी भावुक होते हैं ! मैं डर गया था ! सन्ध्या को क्यों ? सबेरे भी आऊँगा ! मुझे समाज का डर नहीं; डरती तुम हो ! तुम जब कहोगी आऊँगा। मना करोगी तो न आऊँगा, परन्तु प्रतिमा की हत्या न होने दूँगा। नहीं, मा ! यह नहीं होने दूँगा।

[वह कमरे में उत्तेजित-सा टहलने लगता है। गोमती वहाँ आती है। वह स्नान करके लौटी है। इसके लम्बे बाल पीठ पर लहरा रहे हैं। हाथ में पानी का भरा लोटा है]

गोमती—हरीश, इधर सुन। विधवा को समाज का डर नहीं होता; क्योंकि समाज उसे पापसे ऊपर समझ ही नहीं सकता। तब तेरे नये घर की व्यवस्था करने मैं चलूँगी। किसी पुण्यात्मा के वहाँ जाने की जरूरत नहीं ?

[वह वैसे ही लौट जाती है]

हरीश	सब एक	—जी जी ई ई...।
कमला	साथ	—तुम पापिन हो, जीजी ! तुम नहीं, नहीं...
सुनन्दा	चौंककर	—तुमने क्या कहा, गोमती ! हम पुण्यात्मा में हैं, हम...

[सुनन्दा हठात् उठ खड़ी होती है]

सुनन्दा—तू मुझे छोड़ देगा, पर मा बेटे को नहीं छोड़ सकती, हरीश ! यह एक कटु सत्य है। और गोमती की बात का अविश्वास मुझसे नहीं होता। वह विधवा है वह असत्य नहीं कहेगी...।

[क्षण-भर वह ठिठकती है]

वह प्रतिमा को हम सबसे अधिक समझती है, हरीश ! वह यदि चाहती है तो मैं नहीं रोकूँगी, लेकिन हरीश ! प्रतिमा आयेगी तो मेरे घर की छत के नीचे। उसे लेकर तुझे भटकना नहीं पड़ेगा।

[शब्द उसका साथ नहीं देते वह रो पड़ती है]

हरीश } अचरज और } —मा, मा आ आ...।
कमला } हर्ष से }

सुनन्दा—(रोते-रोते) और हरीश ! प्रतिमा को लेने के लिए भी तू नहीं जा सकता। उसे मेरे घर में लाने की हिम्मत किसी और में है ही नहीं, सिर्फ मुझमें है।

[वह दोनों हाथों से मुँह ढँककर सुबक-सुबक कर रो उठती है और अस्फुट् स्वर में बोलती है]

सुनन्दा-मेरे कुल-देवता ! मेरे स्वर्गत स्वामी तुम देख रहे हो ...।

हरीश (स्तब्ध है)—मा, मा....तुम महान् हो (द्रवित होकर), मा सभी महान् हैं। कमला (हर्ष से भरकर) भइया ! मैं जाती हूँ। मैं प्रतिमासे कहूँगी—'प्रतिमा बहन ! तुम्हारा भाग्य जागा। तुमने पाप करके पुण्य कमाया।'

हरीश } एक साथ } —कमला ! यह पाप नहीं है।
सुनन्दा } चौंककर } —कमला ! यह पुण्य नहीं है।

गोमती—(रास्ते में जाती हुई) कमला ! प्रतिमा ने क्या पाप किया है और क्या पुण्य किया है; इसका निर्णय करने का अधिकार तुम्हें नहीं है। स्वयं प्रतिमा को है और...।

कमला—(क्षण-भर ठिठककर) और परमेश्वर को है ! यह मैं जानती

हूँ जीजी !

[वह मुसकराती है और झपटकर नीचे उतर जाती है। सुनन्दा, हरीश और गोमती सब खिड़की से उसे भागते हुए देखते हैं। वह भागी चली जा रही है। सहसा पड़ोस की घड़ी बज उठती है--एक, दो, तीन...नौ बजते हैं। सुनन्दा चौंककर नीचे चली जाती है और गोमती पूजा-मन्दिर में। मंदिर पर गुम्बज है और गुम्बज पर केवल एक कलशी। सूरज की किरणें उससे आ लगती हैं। हरीश भी नीचे उतरता जाता है, पर कलशी पर उसकी नजर ठहरती है। वह मुस्करा उठता है। और तब परदा धीरे-धीरे नीचे गिरता जाता है।]

४ प्रेयसि पाहिले

पुरुष पात्र	स्त्री पात्र
नितीन— एक प्रसिद्ध लेखक।	ज्योति—नितीन की पत्नी।
प्रदीप— नितीन का एक मित्र।	
गंगादीन— नौकर।	

पहिला दृश्य

स्टेज पर एक शिक्षित मध्यवर्ग के मकान का दृश्य। एक बड़ा कमरा जिसे परदा डाल कर दो भागों में बाँट दिया गया है। एक ओर शयनागार दूसरी ओर लायब्रेरी। शयनागरसे खाने के कमरेका काम भी लिया जाता है। उसमें दो आलमारियां हैं, जिनमें टी सेटके अतिरिक्त अनेक प्लेटें, सुन्दर गिलास, लस्सी बनाने का जग, लिली बिस्कुट के दो पैकेट, गुलजार हनी की तीन सुन्दर शीशियां और दो जगों में चुने काजू तथा बादाम। एक कोने में नये फैशन का बड़ा फोंल्डिंग पलंग है, उस पर कम्बल ढँका है। उसके पास एक छोटी टेबुल रखी है, जिस पर एक टाइमपीस, दो-तीन सुन्दर खिलौने, एक गुलदस्ता करीने से सजे हैं। कमरे में एक गोल मेज भी है, उस पर चाय का पूरा सामान रखा है। दो कुरसियां हैं। एक खाली है। एक पर ज्योति बैठी

हुई केटली से निकलती हुई चाय की भाफ को देख रही है। वह गुनगुनाती है और रह-रह कर अंगड़ाई लेती है। वह सुन्दर है, युवती है, गौर वर्ण, भरा हुआ चेहरा! हाथ मांसल और उंगलियां लम्बी पतली हैं; उनमें कई अँगूठियां पहिने हैं। कानों में लम्बे-अर्द्ध-चन्द्राकार कर्णफूल हैं। कलाइयों में नये कटके ब्रैस-लेट और गले में हार है; जिसे वह--बार बार अनमनी होकर घुमाने लगती है। इस समय वह एक हाथ कुरसी की पीठ पर और दूसरा केटली पर रखे धीरे-धीरे गुनगुना रही है। वह चौंक पड़ती है। निनीन वहां आता है। आंखें बताती हैं कि यौवन ने उसे धोखा नहीं दिया है, परन्तु उसे यौवन की चिन्ता नहीं है। व्यग्र व्यक्तियों की भांति उसके मुख की सौम्यता गहरी गम्भीरता में पलट गयी है। शेष शरीर पर उदासीनता की छाप हैं। कुरता, पाजामा, साफ होकर भी लापर--वाही की साक्षी देता है। सिरके बाल रूखे और अस्तव्यस्त हैं। वह हाथमें झोला लिये है। पास आकर उसे कुरसी की पीठ पर लटका देता है। फिर ज्योति की ओर देख कर चौंकता है।]

नितीन— अरे! ज्योति, तुम अब तक बैठी हो?

ज्योति (अलस स्वर)—और क्या करती?

नितीन—क्यों भला? चाय पीकर पढ़ सकती थीं या...या...।

ज्योति (आंखें उन पर गड़ा देती है)—या...?

नितीन— या कुछ भी कर सकती थीं। इस प्रकार समय खोना ठीक नहीं है। आज कल देश का समय बड़ा कीमती है। क्षण देखने में कितना अल्पका-लीन हैं परन्तु सिन्धु के समान उसकी शक्ति कि थाह नहीं है।

[बोलता--बोलता कुरसी पर बैठता है। ज्योति चुपचाप काजू की प्लेट सर काती है।]

ज्योति--खाइये।

नितीन [गम्भीर, काजू खाता है]-- हम लोग काजू खाते हैं। खाद्य-पदार्थों के विशेषज्ञों की राय है : काजू में मांस से अधिक शक्ति होती है: परन्तु जिन्हें शक्तिकी जरूरत है, उन्हें यह नहीं मिलता। आजके संसार का यही नियम

है जिनको जिस चीज की जरूरत है वह उसे नही मिलनी चाहिए।

[ज्योति चाय का प्याला बना कर आगे बढ़ाती है]

ज्योति--देखिये, चीनी ठीक है ?

नितीन (चौंक कर)— ठीक है।

[प्याला उठा कर दो घूंट चाय पीता है। ज्योति हँसना चाह कर भी रोकती है।]

नितीन (प्याला रख देता है)-ज्योति ! एक बात मेरी समझ में नहीं आती।

ज्योति -- क्या ? [उत्सुकता मुख पर झलकती है]

नितीन -- यही कि तहजीब क्या है ?

[ज्योति की उत्सुकता एकदम मर जाती है और वह एक लम्बी सांस खींच कर रह जाती है]

नितीन (दार्शनिक की तरह)— मैं समझता हूँ, सहूलियत और सहूलियत को प्राप्त करने की शक्ति के योग से जो कुछ प्राप्त होता है, उसी का नाम तह-जीब है।

ज्योति (केटली उठा कर)-चाय और बनाऊं ?

नितीन (जल्दी जल्दी घूंट भरता है)— नहीं। इस वक्त मुझे कुछ नहीं चाहिए (तौलिये से मुँह पोंछ कर) क्या बजा होगा ? (टाइमपीस देखता है) ओ दस ! क्या मुसीबत है ?

[शीघ्रता से उठ कर जाता है, पर द्वार पर पहुँच कर मुड़ता है]

नितीन-देखो ज्योति ! शाम को मुझे मीटिंग में जाना है। दस बजे से पहिले नहीं लौटूँगा।

[ज्योति केटली पर हाथ रखे बैठी रहती है। कुछ क्षण उसके पैरोंकी मिटती ध्वनि को सुनती है, फिर सहसा आकस्मिक उत्तेजनाके साथ चाय की ट्रे को पीछे हटा देती है। प्याले बेबसी से झनझना उठते हैं। वह तेजी से उठती है और कुरसी को झटके के साथ पीछे ढकेल देती है, पुकारती है]

ज्योति— गंगादीन, गंगादीन ! [एक गूँज फिर निस्तब्धता]

ज्योति (क्रुद्ध) — गंगादीन, गंगादीन, कम्बख्त... । (कुछ याद आता है) ओ... (झिनझिनाती है) सब एक मिट्टी के बने हैं। जहां जाता है, वहीं गड़ जाता है।

[इसी समय कोई पुकारता है । ज्योति एकदम मुखरित होती है ।]

स्वर— नितीन बाबू !

ज्योति (प्रसन्न)— आ जाइये ! [प्रदीप का प्रवेश । नितीनका समवयस्क है पर मेक-अप भिन्न है । सिर पर गान्धी-कैप है, जिसकी नोक ठीक नाक से समकोण बनाती हुई ऊँची पेशानी पर झुक आई है । बाफ्ते के कुरते में उसका माँसल बदन उभर आया है। उसपर काली जवाहर कट है । पैरों में ढीला पाजामा और चमचमाती सैन्डिल पहिने है । आंखों में मुस्कराहट और शरीर में चपलता है । ज्योति उसे देख कर खिलती है । दोनों उड़ती दृष्टि एक दूसरे पर डालते हैं और गम्भीर हो जाते हैं । ज्योति बैठने को भी नहीं कह पाती]

प्रदीप— नितीन कहाँ है ?

ज्योति— गये । [फिर क्षणिक निस्तब्धता । ज्योति जागती है]

ज्योति— बैठिये । चाय पियेंगे ।

प्रदीप— चाय ? हाँ एक प्याला पी सकता हूँ ।

[दोनों बैठते हैं । ज्योति चाय बनाती है । चीनी डालती डालती रुकती है]

ज्योति—कितनी चम्मच ?

प्रदीप [ज्योति को देखता है] — चीनी कम डालिये !

ज्योति (मुस्कराती है)—-क्यों ?

प्रदीप (मुस्कराता है)-- मुँह चिपचिपाने लगता है ।

[ज्योति एक प्याला प्रदीप को देती है, एक स्वयं उठाती है]

(ज्योति (घूँट भरती है)- वैद्यक पढ़ी है आपने ।

प्रदीप (चाय सिप करता है)— वैद्यक नहीं मनोविज्ञान पढ़ा है और मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि ज्यादा चीनी खाने से आंतों में एक किस्म का दर्द पैदा हो जाता है, जो मस्तिष्ककी शांति भंग कर देता है। फिर उत्तेजित मस्तिष्क

शक्तिशाली साहित्य का सृजन करता है। वह विद्रोहियों का, अर्थात् सर्वहाराओं का साहित्य होता है। सर्वहारा अर्थात् शोषित......

ज्योति (ऊब कर) —सर्वहारा का अर्थ मैं जानती हूँ, आप कहे चलिये।

प्रदीप [उत्साहित होकर चाय की घूंट भरता है]—जी हां, वह शोषितों का साहित्य होता है। संसार में उसकी कदर होती है परंतु... ।

ज्योति (उत्सुक)- परंतु क्या ?

प्रदीप—परन्तु उत्तेजित मस्तिष्क विद्रोह करते-करते अन्धा हो जाता है। वह प्रेम और सौहार्द खो बैठता है। वह केवल प्रबल शक्तियों से लोहा लेना जानता है, प्रेम करना नहीं ...

[ज्योति अनजाने में एक गहरी सांस खींचती है। नेत्रों में जल भर आता है। उसे छिपाने में असमर्थ वह व्याकुल हो उठती है]

प्रदीप (ज्योति को देख कर सहसा) —शायद आपकी तबियत कुछ खराब है (उठता है)।

ज्योति (उठती है) –नहीं, नहीं। मैं बिल्कुल ठीक हूँ। वैसे ही एक विचार आ गया था।

प्रदीप-विचार का आना विद्वान् के लिए ठीक होकर भी मनुष्य के लिए ठीक नहीं है। यह अभाव का प्रतीक है, अभाव असन्तोषका और असन्तोष...।

ज्योति (मुस्करा कर) –बस करिये मनोवैज्ञानिक महोदय ! असन्तोष प्रगति का लक्षण है यह मैं जानती हूँ ...... ।

प्रदीप (एक दम) –बस बिल्कुल गलत। यह तुम नितीन के स्वर में बोलती हो। परन्तु मेरे मनोवैज्ञानिक का मत है कि असन्तोष मौत का प्रतीक है।

ज्योति (मुखरित होती है) —और आप मौत को प्यार नहीं करते ?

प्रदीप–बिल्कुल नहीं। मै जीवन को प्यार करता हूँ, जीवन को भूल कर मौत से प्रेम करना विश्वासघात है। सोचो तो जिस चीज को मैंने देखा नहीं, उससे कैसे प्रेम किया जा सकता है।

ज्योति (हँसती है)-आप ठीक कहते हैं। अपरोक्ष वस्तु से प्रेम नहीं भय

होता है।

प्रदीप (उछल कर)-बेशक, बेशक। एक लाख रुपये की बात कही है तुमने! जो प्रत्यक्ष से प्रेम नहीं करते वे कायर होते हैं।

[वे फिर बैठ जाते हैं। ज्योति काजू की प्लेट आगे बढ़ाती है]

ज्योति—बातें करते-करते खाना न भूलिये।

प्रदीप (मुस्करा कर)-धन्यवाद! आप इतनी सजग हैं, यह शुभ है। नितीन भाग्यशाली है, उसे ऐसा जीवन-साथी मिला। विद्वान् होकर भी वह लापरवाह है। विद्वान् लोग होते ही एकांगी है। माफ करना वे पूर्ण मानव नहीं होते। मानव वही है जो अन्तर और बाह्य में सामंजस्य स्थापित कर पाता है। (सहसा ज्योति को देखता है) लेकिन वैसे नितीन मनस्वी है:

ज्योति (सहसा चपल होकर) –अच्छा प्रदीप बाबू! बताइये, सिनेमा के बारे में आपके मनोविज्ञान की क्या राय है?

प्रदीप (प्रफुल्लित होता है)-सिनेमा मनोरंजन की वस्तु है, और मनोरंजन जीवन की पहली शर्त है। उसके अभाव में······

ज्योति (बीच में काट कर)–तब आप सिनेमा देखने चलेंगे?

प्रदीप (चौंकता है)–मैं?

ज्योति—जी नहीं। आप और मैं।

प्रदीप (अनमना)—और नितीन·········

ज्योति– जी नहीं। आज उनकी मीटिंग है, सदा की भांति दस बजे लौटेंगे। (उठती है) क्या बजा है? (घड़ी देखकर) कुछ ग्यारह। छः बजे के शो में चलेंगे, ठीक पांच बजे मैं तैयार रहूँगी।

प्रदीप (खोया-खोया)—जी।

ज्योति (निर्द्वन्द)—तब ठीक है।

[ज्योति मुस्कराती है। शरीर में अंगड़ाई फूटने लगती है। मन ही मन गुनगुनाती है, प्रदीप उसे देखता है, चौंकता है। गहरी गम्भीरता आंखों

में छलकती है। परन्तु सूर्य के ऊपर से उड़ते बादल की छाया के समान दूसरे ही क्षण वह गम्भीरता नष्ट हो जाती है। वह उठता है और घड़ी देखता है]

प्रदीप (अचरज से)—ओ ग्यारह बज चुके हैं! तो मैं चला। नमस्ते। (रुक कर) नितीन से कहने आया था!

ज्योति (मुस्करा कर)—मैं कहूँगी (हाथ जोड़ कर) नमस्ते......।

[कहते-कहते नेत्र झुकते हैं और वह अर्घ देने की अवस्था में आ जाती है। सलज्जा नववधू के समान उसके नेत्र एक बार उठकर फिर झुकते हैं। प्रदीप काँपता है और फिर एक झटके के साथ बाहर चला जाता है। निस्तब्धता छाती है, परन्तु दूसरे ही क्षण एक गहरी सांस ले कर ज्योति फिर प्लेट समेटती है। परदा गिरने लगता है, फिर उठता है। ज्योति ट्रे उठाये शान्त मन से अन्दर जा रही है। उसके सिर का पल्ला कुचों पर आ गया है। वह गुनगुनाती है। फिर परदा गिर जाता है]

दूसरा दृश्य

[स्टेज पर वही पुराना दृश्य। रात के दस बजने वाले हैं। बिजलीके प्रकाश में नितीन लाइब्रेरी में बैठा लिख रहा है। बार बार सोचनेके लिये मेज पर कुहनी टेक कर छतमें ताकता है। फिर आंखें मीच कर अन्तरमें झाँकता है। दूसरे कोने में घर का अधेड़ नौकर गंगादीन मोटी चादर लपेटे बैठा है। वह ऊँघ चला है। कुछ देर इसी प्रकार निस्तब्धता छाई रहती है, फिर किसीके आने की खटखट होती है। नितीन लिखनेमें तन्मय है, परंतु गंगादीन चौंक कर उठता है। ज्योति आती है। वह पंजाबी वेश में है। मखमल का सूट है। दुपट्टा ओवर-कोट में छिप गया है। सिर की सुनहली पिन और कानोंके मत्स्याकार कर्णफूल प्रकाश में चमकते हैं। उसके नेत्रों में सन्तोष और शंका दोनों है। वह आकर क्षण भर नितीन को देखती है, फिर घड़ी को; पौने दस बजे हैं। गंगादीन उठता है।]

ज्योति (धीमा स्वर)— कब आये थे?

गंगादीन (धीमा स्वर)— मालिक तो आठ बजे आ गये थे।

ज्योति— पूछते थे ?

गंगादीन – आत ही एक बार पूछा था। बस।

[ज्योति नितीन के पास आती है। नितीन लिखता रहता है। एकबार सोचने के लिये जैसे ही गरदन उठाता है, दृष्टि ज्योति पर जा पड़ती है। ज्योति मुस्कराती है। नितीन कलम रोक कर बोलता है।]

नितीन— क्या बात है ?

ज्योति (देखते हुए) – कुछ नहीं……… (बैठ जाती है) मीटिंग क्या जल्दी खत्म हो गई थी ?

नितीन— (अन्यमनस्क) हाँ।

ज्योति– खाना नहीं खाओगे ?

नितीन (झुँझला कर)— आह ! एक विचार आया था, खो गया। विचारों की दुनिया भी कैसी है ? हवा की तरह उठते हैं।

(ज्योति की ओर) – मेरा खाना यहीं भेज दो।

[ज्योति उठकर, क्षण भर नितीन की कलम को देखती है, जो सरपट दौड़ रही है। फिर खीझ कर शयनागार में आती है और उसी तरह कपड़े पहिने पलंग पर गिर पड़ती हैं। दोनों हाथों से मुँह ढांप लेती है और सुबकियों में फूट पड़ती है। गंगादीन उन सुबकियों को सुनता है और समझता है। नितीन कलम के अतिरिक्त और कोई स्वर सुनने में असमर्थ है; कुछ देर स्टेज पर सुबकियों का स्वर गूंजता है। फिर सहसा ज्योति स्वयं ही उठती है। लाल-लाल आंखों को दुपट्टे से पोंछती है और बालों को पीछे करती-करती पुकारती है–

ज्योति— गंगादीन।

गंगादीन (पास आता-आता)— जी।

ज्योति— खाना ले जाओ।

[गंगादीन आकर खाना लगाने में मदद करता है]

ज्योति— खाना बना कर तुमने उनसे पूछा था ?

गंगादीन— पूछा था। कहने लगे अभी नहीं।

ज्योति-- बस। तुमने फिर नहीं पूछा।

गंगादीन— जी नहीं। उन्हें लिखते......

ज्योति (खामखा तेज होती है) – गंगादीन! तुझे तनिक भी अक्ल नहीं है। इसी घरमें बूढ़ा हो चला है। जानता नहीं कि वे कभी माँग कर नहीं खाते, उन्हें खिलाया जाता है। लेकिन...

गंगादीन (कैफियत देता है)- बीबी जी...।

ज्योति (साधिकार)—चुप रहो और खाना ले जाओ (गंगादीन चलता है,) और देखो उन्हें खिलाकर तुम भी खा लेना। मैं नहीं खाऊँगी, मेरी तबियत खराब है।

गंगादीन (रुक कर)—बीबी जी...।

ज्योति—जाओ गंगादीन! बहस मत करो।

[गंगादीन सिर झुका कर जाता है। ज्योति कुछ देर दुखी मन बैठी रहती है फिर परदा उठा कर देखती है। नितीन होल्डर ओठ पर लगाये तन्मय कुछ सोचता है। खाना उसी तरह मेज पर रखा है। ज्योति के मुख पर कई भाव आते हैं और जाते हैं। फिर सहसा भावावेश में वह नितीन के पास आती है]

ज्योति (कोमल स्वर)—खाना नहीं खाया! खा लीजिये।

नितीन (अन्यमनस्क)—हूँ...(सहसा ज्योति को देखता है और मुस्काराता है) तुम सोई नहीं अभी! जाओ सो जाओ! मुझे अभी एक अछूता विचार सूझ आया है। सवेरे तक भूला जा सकता है, यही मुसीबत है, ज्योति! याददाश्त बहुत कमजोर होती जा रही है।

ज्योति (बात बढ़ाना चाहती है)—काम क्या आप कम करते हैं। किसी भी समय......।

नितीन (हँसता है) चाहता हूँ—(भोजन की थाली देखता है) ओ! खाना रखा है। क्या मुसीबत है। ज्योति! मैं अपनी रचनाओं से देश में आग फूँकना चाहता हूँ। देश का मस्तिष्क मेरे हाथ में है। मस्तिष्क ही तो मनुष्य को मनुष्य बनाता है। (खाना खाता है) अच्छा जाओ, ज्योति!

तुम सोओ। मैं कहानी पूरी करके आऊँगा।

[ज्योति फिर बेबस शयनागार की ओर लौटती है, फिर मुड़ती है, फिर लौटती है। परदा गिरने लगता है। आधा गिर कर फिर उठता है। नितीन खाना खा रहा है, ज्योति उसे देख रही है। परदा पूरा फिर गिर जाता है। पूर्ण निस्तब्धता छा जाती है]।

तीसरा दृश्य

[स्टेज पर वही दोनों कमरे थोड़ी बहुत रद्दोबदल के साथ दिखाई देते हैं। पहिली सुव्यवस्था अब कुछ अव्यवस्था में पलट गई है। इस समय रात के साढ़े नौ बजे हैं। बिजली का प्रकाश है। शयनागार में नितीन मेज पर बैठा खाना खा रहा है और सामने खड़े गंगादीन से बातें करता जाता है]

नितीन—तो ज्योति अभी नहीं लौटी ?

गंगादीन—जी कहलाया है, दस बजे के बाद आवेंगी।

नितीन (पानी पीता है)—कहां गई है ?

गंगादीन—मालिक ! मुझे पता नहीं। प्रदीप बाबू आये थे (कुछ कह गया; फिर संभलता है) तो कोई डर नहीं। कभी-कभी.......।

गंगादीन (बोलने में कुछ परिश्रम से)—मालिक...(शब्द टूट जाते हैं)।

नितीन (कुछ नहीं समझता)—गंगादीन ! ज्योति का मन घूमने को बहुत करता है। उसने मुझसे कई बार कहा परन्तु......।

गंगादीन (एक दम बदल जाता है)—हां मालिक ! आप एक दो महीने के लिए कहीं चलिए। बीबी जी का मन बहुत प्रसन्न होगा।

नितीन (सूप पीता है)—सच !

गंगादीन—सच मालिक ! कहती थीं—गंगादीन, जी ऊब रहा है। कहीं बाहर घूमने चलें।

नितीन [प्रसन्न]—तो अब चलेंगे।

गंगादीन (प्रसन्न)— कब ?

नितीन (थाली सरकाता है और हँसता है)— बहुत शीघ्र ! कल–आज ही चल सकते हैं। (उठता है) ज्योति आने वाली होगी (घड़ी देखता है)। हां, साढ़े नौ बज चुके हैं। देखो शायद मैं सो जांऊं क्योंकि आज मुझे कुछ नही लिखना है--तो तुम ज्योति से (कुछ रुककर) नहीं। तुम कुछ मत कहना। मैं स्वयं कहूँगा।'

[गंगादीन चुपचाप बरतन सँभालता है। नितीन तौलिये से हाथ पोछता लायब्रेरी में आता है। अलमारी खोल कर कोई पुस्तक ढूँढता है और किसी गाने की ट्यून गुनगुनाता है । फिर एक पुस्तक लेकर सोफे में गड़ जाता है । कुछ देर स्टेज पर निस्तब्धता रहती है, केवल पन्ने पलटने का शब्द होता है। फिर वह भी बन्द हो जाता है। नितीन सो जाता है । उसके गहरे निश्वासोंकी ध्वनि वातावरणमें मिल जाती है। तभी गंगादीन परदा उठाकर वहां आता है । देखता है–दस बज चुके हैं और नितीन सो रहा है। वह कम्बल उठाकर धीरे–धीरे नितीन को ओढ़ा देता है और फिर शयनागार में लौट आता है। अपनी रजाई लपेट कर फर्श पर बैठ जाता है और बाहर की आहट लेता है, परन्तु नींद उस पर भी काबू पा लेती है। वह बैठे–बैठे ऊँघने लगता है। स्टेज पर पूर्ण शान्ति छा जाती है, परदा गिरना चाहता है, परन्तु इसी समय सहसा नितीन चौंक कर पुकारता है। परदा उठ जाता है]

नितीन(चौंकता है) –ज्योति, ज्योति...(शब्दकी गूंज और फिर निस्तब्धता)।

नितीन (कराहता है)—ज्योति , ज्यो--ओ–ती--ई......!

[शयनागार में गंगादीन चौंकता है। उसके शीघ्रता से आने की आवाज। फिर तेज रोशनी फैल जाती है। गंगादीन आंखें मलता हुआ नितीन के पास जाता है ।]

गंगादीन (घबराहट)—क्या है मालिक ?

नितीन (कराहता है) गंगादीन ! ज्योति नहीं आई।

[नितीन सोफे पर बैठा है । उसके मुख पर गहरी वेदना है वह दोनों हाथों से पेट थामे है।]

गंगादीन (बिना सुने)—क्या बात है मालिक ? क्या पेट में दर्द है... ?

नितीन (तेज कराहट)--ओह गंगादीन ! बहुत तेज दर्द है । ज्योति...!

गंगादीन (चौंक कर)—जी वे तो नहीं आई... ।

[दोनों एक साथ घड़ी को देखते हैं । ग्यारह बज चुके हैं । दोनों फिर एक दूसरे को देखते हैं । गंगादीन का मुंह उतर जाता है । नितीन कराह उठता है ।]

नितीन—गंगादीन, देखो अलमारी में कैम्फरोडीन की शीशी है (कराहता है) नीली शीशी...उसे ले आओ । आह, दो बूँद पानी में— (दर्द के कारण चीखता है)

फिर एक पुस्तक लेकर सोफे में गड़ जाता है । कुछ देर स्टेज पर निस्तब्धता रहती है, केवल पन्ने पलटने का शब्द होता है ।

[गंगादीन शीघ्रता से शीशी निकालता है , हाथ कांपता है और दो के स्थान पर कई बूँद टपक पड़ती है । नितीन देख रहा है । झुँभला पड़ता है]

नितीन (झुँभलाता है) गधा , बेवकूफ ! अन्धा हो गया है ...।

[गंगादीन अपराधी की तरह कांपता–कांपता प्याली पकड़ता है, नितीन दवा पीकर प्याली फेंक देता है, और लेटना चाहता है ।]

नितीन—गंगादीन ! ज्योति क्यों नहीं आई ? पहिले भी क्या ... ?

गंगादीन—नहीं मालिक पहिले तो वे सदा आठ नौ तक लौट आती थीं।

नितीन—प्रदीप के घर जाती है न ? (कराहता है)

गंगादीन (नम्रता से) — मालिक ! आग लाकर सेंक दें ?

[और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना बाहर चला जाता है । नितीन का दर्द फिर बढ़ता है । वह स्वस्थ होने की कोशिश करता है । लेट जाता है फिर स्वयं ही बोलने लगता है ।]

नितीन—(स्वयं) तो ज्योति नहीं आई । अभी तक नहीं आई ।

[कराहट बढ़ती है । पेट को जोर से दबाताहै । तभी गंगादीन अंगीठी और रूई लेकर आता है ।]

नितीन (बोल रहा है)—क्यों नहीं आई ? क्यों...?

गंगादीन—मालिक , सेंक लो... ।

नितीन (अनसुना करके) गलती मेरी है...। (गंगादीन को देख कर) गंगादीन ! ज्योति नहीं आई ?

गंगादीन—नहीं मालिक, शायद प्रदीप बाबू की मां जी ने रोक लिया है। मालिक, सेंक लो ।

[नितीन कराहता है और बिना कुछ कहे हाथ बढ़ा देता है ।

[गंगादीन रूई गरम करके देता है, कुछ देर इसी तरह सिकाई होती है, शान्त हो चलता है]

नितीन—गंगादीन, तुम बहुत अच्छे आदमी हो !

गंगादीन—मालिक ।

नितीन—(गहरी सांस लेता है) गंगादीन ! तुम्हारी बीबी है ?

(गंगादीन कुछ नहीं बोलता । नितीन करवट बदलता है)

नितीन—बस गंगादीन । दर्द कम है जाओ सोओ । स्विच ऑफ न करना । कोई आये तो अँधेरा रहेगा ।

गंगादीन (गम्भीर)—अच्छा मालिक ।

नितीन—गंगादीन ! मुझे मत जगाना ।

गंगादीन—अच्छा मालिक।

नितीन—और देखो ! तुम मुझे बार-बार मालिक-मालिक मत कहा करो ।

गंगादीन (एकदम ढीला स्वर)—मालिक...।

नितीन—जाओ ।

[नितीन कम्बल खींच लेता है । गंगादीन क्षण भर शून्य में ताकता है फिर नितीन को देखता है । आंखों में पानी आ जाता है । उन्हें पूछ नेमें असमर्थ वह गरदन को झटका देता है । फिर बाहर चला जाता है । परदा गिरने लगता है । घड़ी साढ़े ग्यारह बजाती है । नितीन मुँह खोल कर देखता है, फिर ढक लेता है । परदा गिर जाता है ।]

चौथा दृश्य

[प्रातःकाल के नौ बज चुके हैं। नितीन लाइब्रेरी में सोफे पर बैठा लिखने की चेष्टा करता है। बार-बार अटक कर चारों तरफ ताकता है उसके सामने सूटकेस, अटेची और होल्डाल पड़े हैं। मेज पर कुछ कपड़े रखे हैं। एक बार उन्हें देखकर नितीन जो कुछ लिखा है उसे गुनगुनाता है।]

नितीन--(धीरे धीरे पढ़ता है) "...रात तुम नहीं लौटीं और आश्चर्य इसी रात को मुझे पता लगा तुम मेरे लिए क्या हो ? तुमने जो रास्ता पकड़ा है, दुनिया उसके लिए तुम्हें दोष दे सकती है, पर चाह कर भी मैं नहीं दे सकता। गलती मेरी है। मैं तुम्हें अपनी समझता रहा परन्तु अपनी बनाने का उद्योग कभी नहीं किया। मैंने जानबूझ कर ऐसा किया यह बात तो नहीं है, परन्तु अपने बचाव के लिए अज्ञान की दुहाई देना पाप है। मैं उस पाप का भागी नहीं बनना चाहता। तुम कुछ भी करने को स्वतन्त्र हो। आवश्यकता पड़े तो मैं तुम्हारी निर्दोषता सिद्ध करने में पीछे न हटूंगा। तुम यह विश्वास मुझ से ले सकती हो...।"

[इस समय गंगादीन अन्दर से एक बड़ा ट्रंक उठा कर लाता है। हॉफ रहा है। नितीन रुक कर उसे देखता है फिर बेबस हँस पड़ता है।]

नितीन—(हँसता है)—अरे, अरे, गंगादीन ! इसे क्यों उठा लाये ?

गंगादीन (हॉफता है)—मालिक, मुझे कुछ पता नहीं लगता क्या ले जाना है। आप बता दें...।

नितीन—ठीक है गंगादीन, मैं देख लूँगा (रुक कर). पर इस मामले में मैं तुमसे अधिक बुद्धिमान नहीं हूँ। याद नहीं पड़ता। मुझे कभी ऐसा करने का अवसर मिला हो। पहिले माँ करती थीं, फिर ज्योति... (गंगादीनको देख-कर) खैर ! तुम ट्रंक का सब सामान निकाल डालो। मैं चिट्ठी पूरी कर लूँ।

[नितीन पत्र लिखने लगता है। गंगादीन ट्रंक का सामान निकाल कर मेज पर रखता है। ढेर लग जाता है। नितीन रुक कर फिर उसे देखता है]

नितीन (विस्मय)— इतना सामान ! क्या होगा इसका ? गंगादीन !

आखिर इस जिन्दगी में तुमने किया क्या है ?

गंगादीन— मालिक.......... ।

नितीन (क्रुद्ध)— फिर वही मालिक ! चले जाओ यहाँ से । तुम इतना भी नहीं कर सकते तो मेरे साथ चलकर क्या करोगे...... ?

गंगादीन (घबराता है)— मालिक...... ।

नितीन— चुप रहो ।

[वह उठता है और जल्दी--जल्दी कपड़े उठाकर कुछ सोफे पर, कुछ नीचे, कुछ सूट केस पर डालने लगता है । गंगादीन चुपचाप भयमिश्रित घबराहट से उसे देखता है । नितीन फिर चिल्लाता है]

नितीन (खीजता है)— खड़े खड़े क्या देखते हो ? जो फालतू है, उन्हें बक्स में रख दो (गहरा स्वर) गंगादीन, तुम कुछ भी नहीं समझते । (धीमा स्वर) मैं पागल हो रहा हूँ । गंगादीन, मेरा मस्तिष्क चकरा रहा है !

[उसका स्वर गिरता है । गंगादीन आगे बढ़कर कपड़े उठाता है]

गंगादीन (बेहद विनम्र)–जानता हूँ मालिक ।

नितीन (दार्शनिक--सा)—गंगादीन ! इसीलिये मैं यहां से चला जाना चाहता हूँ । बहुत दूर चला जाना चाहता हूँ ! (कुछ रुककर) मैंने चिट्ठी लिख दी है । तुम उसे अभी डाकमें छोड़ आओ अभी (फिर कुछ सोच कर); परंतु गंगादीन ! घर पर कौन रहेगा ?

गंगादीन (विस्मित है)— घर पर किसलिये...... ?

नितीन—- किसलिये ? गंगादीन तुम कुछ नहीं समझते । ज्योति आई तो

गंगादीन (हतबुद्धि)— वे आयेंगी ।

नितीन (हँसता है)-- क्यों नहीं आयेंगी ! उसका सभी सामान यहीं पर है । वह तो कुछ भी नहीं ले गई । इसलिये तुम यहीं रहो, गंगादीन ! न जाने कब आ जाये । आखिर घर तो उसी का है । उसे कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिये । (कुछ सोच कर) और गंगादीन ! वह चिट्ठी भी मत डालो । न मालूम वह कहां गई हैं ? कौन जानता है हमारा विचार गलत हो (गहरी साँस)।

गंगादीन (अनबूझ)— जी ।

नितीन— और मैं सोचता हूँ मुझे भी आज नहीं आना चाहिये ।

गंगादीन (उसी तरह अनबूझ) – जी ।

नितीन (सांस लेकर)—तो ले जाओ यह सब झगड़ा मुझसे नहीं होता (मुस्कराता है) । मनुष्य का मन कितना चंचल है ? पहिले क्षण जो सोचता है, उसपर उसका कितना दृढ़ विश्वास होता है, परन्तु दूसरा क्षण इस विश्वास को खण्ड खण्ड कर देता है (बैठ जाता है)। तो गंगादीन ! चाय ही बनालो ।

[गंगादीन किंकर्तव्यविमूढ़-सा कपड़े उठा कर ट्रंक में रखता है। नितीन लिखने के लिये कापी उठाता है । कुछ क्षण दोनों सब कुछ भूल कर व्यस्त हो जाते हैं । फिर सहसा चौंक कर उठते हैं । शयनागार में खड़खड़ होती है, दोनों की दृष्टि मिलती है]

नितीन (अपने को धोखा देता है)—गंगादीन ! देखो क्या गिरा है ?

गंगादीन—मालिक········ ।

[गंगादीन उठता है और परदा हटाता है । उसके हाथ कांपते हैं । नितीन उधर ही देख रहा है । वह सिहर उठता है । उसके हाथ से कलम छूट कर गिर जाती है पर दूसरे ही क्षण वह मुँह फिरा कर लिखने में व्यस्त हो जाना चाहता है । शयनागार में ज्योति है । वह मेजके पास खड़ी है । उसके मुखपर एक गहरी वेदना की छाया है । परदा उठते ही वह सिहर उठती है । एक क्षण में कई भाव उसके मुख की वेदना को हल्की गहरी करते हैं । भय, क्रोध, कातरता और विद्रोह बारी-बारी आते हैं अन्त में वह स्थिर मुड़ कर गंगादीन को देखती है उसका स्वर तेज होकर भी प्रभावहीन है]

ज्योति (तीखा स्वर)--क्या है ?

[गंगादीन कांपता है तभी नितीन गरदन घुमाता है । आँखें मिलती हैं । वह मुस्कराता है । ज्योति पीली पड़ती है]

नितीन-- ओ तुम आ गईं ज्योति ! बड़ी देर करदी तुमने । यह गंगादीन कितना बुद्धू है ? आज अभी तक चाय नहीं बनी है ।

[ज्योति पर पहाड़ गिरता है। उसका विद्रोह कुचलकर सिसकता है। नितीन कुछ नहीं देखता, उसी तरह बोलता है]

नितीन—और देखो ! मैं एक महीने के लिये बाहर जाने की बात सोच रहा था, परंतु इसे पता नहीं क्या-क्या ले जाना चाहिये ? सब सामान बिखरा पड़ा है। इसे सँभालो भई ! और अपना सामान भी देख रखो। मैं आज ही जाना चाहता हूँ।

[ज्योति और पीली पड़ती है। गंगादीन— हतबुद्धि पागल, देखता है। नितीन मुस्कराता है।]

नितीन-- इस बार खूब घूम लेने का निश्चय कर लिया है ज्योति। मस्तिष्क कुण्ठित हो चला है। लिखने को नई- नई सामग्री चाहिये। जनताकी रुचि प्रतिक्षण बदती है। वे कल की बातें पसन्द नहीं करते (एक क्षण दृष्टि चुराकर) और ज्योति ! इधर अचानक एक बात मुझे और सूझी है। अपनी रचनाओं में जिस मनुष्यता का चित्रण मैं करता हूँ, वही मनुष्यता मुझसे दूर होती जा रही है...।

[सहसा वह ज्योति को देखता है। उसका मुख सफेद हो गया है। उसकी आंखें गीली हैं, वह थर-थर कँापती है।]

नितीन (सहसा चौंक कर)-- ज्योति ! क्या हुआ तुम्हें ? तुम ऐसे क्यों देख रही हो ? तुम बोलती क्यों नहीं ? तुम अबतक कहां थीं ?

[ज्योति जहां खड़ी थी धड़ाम से वहीं गिर पड़ती है। गंगादीन और नितीन दोनों दौड़ते हैं।

नितीन— ज्योति ! ज्योति ! (गंगादीन से) पानी ! जल्दी करो (ज्योति को गोदी में उठा कर पलंग पर लिटाता है) ज्योति, आँखें खोलो। ज्योति...!

[गंगादीन पानी लाता है। नितीन ज्योति के मुँह पर छींटे देता है]

नितीन-- ज्योति ! लो पानी पीलो। उठो ! ज्योति...। (छींटे देता है)

ज्योति (चौंक कर आंखें खोलती है)— जी (नितीनको देखकर) आप ... नहीं, नहीं ! मुझे छोड़ दीजिये। छोड़ दीजिये। मैं... मैं...।

नितीन (स्नेहपूरित) – शांत हो जाओ ज्योति। मैं सब जानताहूँ (धीरे से) परंतु अब छोडूंगा नहीं, विश्वास रखो । अपनी बेवकूफी के कारण बहुत धोखा खा चुका हूँ ।

[ज्योति फिर कांपती है और नितीन को देखती है। नितीन मुस्कराता है ज्योति आंखें मीच कर, बेबस यंत्रवत् नितीन की गोदमें लुढ़क जाती है । नितीन बड़े प्रेम से उसे संभालता है । गंगादीन अन्दर आता-आता ठिठक जाता है । उसके नेत्र चमकते हैं । एक गहरा सन्तोष चेहरे में झलकता है । नितीन उसे देख लेता है । कहता है ।...]

नितीन— गंगादीन ! देखो हम आज सन्ध्या को चलेंगे । सब सामान तैयार रहना चाहिये । अच्छा ?

[गंगादीन बाहर चला गया है । कुछ जवाब नहीं देता । परदा गिरने लगता है । आधा गिर कर फिर उठना है । नितीन अभीतक ज्योति को अंक में लिपटाये है । ज्योति सहसा छिटक कर उठती है, पर खड़े रहनेमें असमर्थ, गिरना चाहती हैं । नितीन उसे संभालता हैं और हँसता है ।]

नितीन (मुस्कराता है)- अब कोई डर नहीं है ज्योति । मैं जाग रहा हूँ ।

[ज्योति मुस्कराती है, उसके चेहरे का रंग लौट आता है और परदा गिर पड़ता है ।]

५ विभाजन

पात्र

प्रभुदयाल—बड़ा भाई भगवती—बड़ी बहू
देवराज—छोटा भाई शारदा—छोटी बहू
महेश, रमेश, नीला, पुजारी मुहल्ले की स्त्रियां आदि आदि ।

पहला सीन

समय—रात के ९ बजे ।

स्थान — एक साधारण कस्बा।

[कस्बे के मुहल्ले में एक घर का आंगन। रात काफी अँधेरी है। आंगन के पार एक कमरे में लालटैन टिमटिमा रही है। उसीका प्रकाश आंगन में फैला है। उसी प्रकाश में एक स्त्री चूल्हे के आगे बैठी है। यह भगवती है। साधारण कपड़े पहिने है। सरदी है, इसीलिये आग ताप रही है। चूल्हे पर दूध पक रहा है कि अन्दर से बालक के रोने की आवाज आती है। उठ कर अन्दर आती है। क्षण भर सन्नाटा छाया रहता है, फिर धीरे-धीरे एक मीठा स्वर वहां आकर फैलता है। भगवती लोरी सुनाकर बच्चे को सुलाती है।]

भगवती—परियों के देश से आ जा री निंदिया।
नीला को आकर सुला–जा री निंदिया।
ऊपर है तारों का संसार, नीचे मेरे मन का प्यार'
चन्दा मामा ऊपर तेरे, नीचे प्राण संग हैं मेरे।
पलकों में आके समा जा री निंदिया।
नीला को आके सुला जा री निंदिया॥

[तभी दरवाजे पर खटखट होती है, कोई पुकारता है।]

आवाज—भाभी···भाभी...!

भगवती—कौन है?

आवाज—मैं—, देवराज!

[भगवती शीघ्रता से उठती है और किवाड़ खोल देती है।]

भगवती—देवराज! क्यों? रात को कैसे आया!

[मुस्कराती है।]

देवराज— (हँसता है) चौंकती हो भाभी! अपने घर के लिए भी रात या दिन का सवाल होता है?

भगवती—घर तो तेरा ही है परन्तु फिर भी कोई काम है क्या?

देवराज—हाँ भइया से काम था।

भगवती—वे तो दस बजे से पहले कभी मन्दिर से नहीं लौटते।

देवराज—तब !

भगवती--कोई जरूरी काम है ? मैं कह दूँगी !

देवराज--हाँ ! तुम ही दे देना ! रुपया लाया था।

भगवती-- (अचरज से) कैसे रुपये हैं ? क्या उन्होंने माँगे थे ?

देवराज-- नहीं तो।

भगवती-- तो।

देवराज—भाभी। कल पहली तारीख है। महेश को रुपए भेजने हैं, वही लाया हूँ।

भगवती—महेश को तो रुपये मैं भेज चुकी। तू कैसे लाया है ?

देवराज— (अचरज से) भेज चुकी ! परन्तु आधे रुपये तो मैं देता हूँ।

भगवती— ओ ! यह बात है। देवराज ! अब तुम्हारे देने की बात नहीं उठती। अब हम अलग--अलग हैं।

देवराज— (अप्रतिभ-सा होकर) भाभी ! तुम क्या कह रही हो ? दुकानें तो तब भी दो थीं, अब भी दो हैं। घर बँट जाने से क्या हम भाई-भाई भी नहीं रहे ?

भगवती—मैं यह कब कहती हूँ भइया ! पर जो बात है, वह कैसे भुलाई जा सकती है। जब हम साझे थे तो दुनियां की दृष्टि में एक थे। तू दो सौ कमाता था और वे दस; परन्तु मेरा दोनों की कमाई पर एक-सा अधिकार था। अब अलग-अलग हैं, तेरे दो सौ रुपयों पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। यह व्यवहार की सीधी बात है। नाते-रिश्ते का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है।

देवराज—परन्तु भाभी ! मेरी आमदनी पर तुम्हारा अधिकार नहीं है, महेश का तो है। मैं उसी को देता हूँ, तुम्हें नहीं...।

भगवती—देवराज ! जब तक हम हैं उसके पालन-पोषन का कर्त्तव्य हमारा है। जब हम नहीं रहेंगे, तब तेरे देने की बात उठ सकती है। (गर्व से) व्यर्थ ही झुकना क्या ठीक है ? जब बहुत थे तब बहुत खर्च करके सिर ऊँचा रखा। अब कम हैं तो हम किसी से मांगेंगे नहीं। ना, तेरी भाभी जीते जी कभी ऐसा

नहीं करेगी। देख फिर कहती हूँ तू देगा तो लौटाने की बात उठेगी। उतनी शक्ति हममें नहीं है। न जाने कल को क्या हो ? भाई-भाई में जो मोहब्बत है वह भी खोनी पड़े। उस समय दुनिया हँसेगी। इसलिये कहती हूँ, तू लेने-देने की बात मत कर। और सुन, जब हम नहीं रहेगें तब तू ही तो करेगा। (क्षण भर रुककर) जा घर पर बहू अकेली होगी। कितना अँधेरा है बाहर।

देवराज—भाभी।

भगवती—हाँ, भइया।

देवराज—तो जाऊँ।

भगवती—और कैसे कहूँ ?

देवराज—मैंने यह नहीं सोचा था, भाभी!

भगवती—देव! तू जानता है जब मैं इस घर में आयी थी, तो तू कितना बड़ा था ? सात वर्ष का होगा। मैने ही पाल-पोष कर इतना बड़ा किया है। उस प्रेम को कोई मिटा सकता है ? उसी प्रेम को अक्षुण्ण रखने को कहती हूँ, देव-राज! तू भाभी के साथ व्यवहार के पचड़े में न पड़े।

देवराज—भाभी ई ई ई......

भगवती—जा। रात बढ़ी आ रही है। इतने बड़े घर में बहू अकेली होगी!

[देवराज की आँखें झर-झर बहती हैं। वह बेबस-सा उठता है और बिना बोले एकदम बाहर निकल जाता है। भगवती किवाड़ बन्द कर लेती है। उसकी आँखों में आँसू छलक आये हैं, पर चेहरे पर एक अद्भुत मुस्कराहट है, जो धीरे-धीरे हँसी में पलट जाती है।]

भगवती— (हँसती-हँसती) पगला! दो नाव में पैर रखना चाहता है!

[भगवती फिर उसी तरह चूल्हे के पास आकर बैठ जाती है। कोयले बुझ चले हैं, उन्हें लहकाने लगती है। फिर निस्तब्धता छा जाती है।]

दूसरा सीन

समय—लगभग १० बजे रात।

स्थान—बाजार में ठाकुर जी का मन्दिर।

[मंदिर में ठाकुर जी की सजी प्रतिमा के सामने पूजा हो रही है। कुछ भक्तजन घंटे घड़ियाल बजा रहे हैं। कुछ दोनों हाथ जोड़े ध्यानावस्था में खड़े हैं। मूर्ति के ठीक सामने एक थाल में कुछ पैसे पड़े हैं। दूसरी तरफ चौकी पर एक तश्तरी में मिष्टान्न और एक लोटे में चरणामृत हैं। पुजारी जी जोर-जोर से पुकार रहे हैं।]

पुजारी— (ध्यान लगाये हुए)

ओ३म्! ओ३म्! ओ३म्! ओ३म्!
त्वमेव माता च पिता त्वमेव।
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव।
त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥
ओ३म् हरि, ओ३म् हरि, ओ३म् हरि, ओ३म् हरि!

[कुछ भक्त जाते हैं, कुछ और आते हैं, जाने वाले पुजारी को प्रणाम कर चुपचाप हाथ फैला देते हैं, पुजारी एक चम्मच से चरणामृत तथा मिष्टान्न का एक टुकड़ा उनके फैले हुए हाथ पर रख देता है। श्रद्धा से झुक कर वे चले जाते हैं। कहीं दूर दस का घण्टा बजता है। पुजारी उठता है। आरती उठाकर घण्टी हिलाता है। कुछ क्षण तक सब मिलकर गाते हैं 'आरती श्री ठाकुरजी की' और फिर सब स्वर एकदम समाप्त हो जाते हैं। पुजारी भक्तों को अन्तिम प्रसाद देनेके लिये आगे बढ़ता है। इसी समय देवराज वहाँ आता है, सबको देखता है।

देवराज—पुजारी जी, पालागन।

पुजारी—जीते रहो, सुखी रहो देवराज! कैसे आये इस वक्त ?

देवराज—भइया को देख रहा था। गये क्या ?

पुजारी—वे अभी गए हैं। कहते थे आज जी कुछ उदास है। सत्संग में नहीं बैठे। हाँ, पूजा समाप्त कर गये हैं। नियम के बड़े पक्के हैं। (हँसता है)

देवराज—हां, पुजारी जी। भइयाने जीवन में एक ही बात सीखी है और वह

है नियम ! नियम से परे उनके लिये कुछ भी नहीं है।

पुजारी--देवराज ! मैं कहता हूँ, प्रभुदयाल क्या इस दुनिया का आदमी है। नहीं, वह तो देवता है। परन्तु (आहिस्ते से) जब से उस घर में आये हैं, कुछ उदास रहते हैं... ।

देवराज-- (चौंककर) हाँ ... । (सँभललकर) इस बार जब कथा हुई थी, आप नहीं आये थे ।

पुजारी— (नम्र स्वर में) हाँ भइया इस बार मैं नहीं आ सका था । काश्मीर चला गया था । बड़ा दुःख रहा । प्रभुदयालके घर कथा हो और मैं न रहूँ ।

देवराज—लेकिन ! पुजारी जी, आप हों या न हों, हम आप को भुला नहीं सकते । आपके दक्षिणा के बीम रुपये मैं ले आया हूँ । (देता है)

पुजारी— (बेहद नम्र होकर) हैं, हैं, हैं, ! देवराज ! मैं कहता हूँ तुम दोनों भाई दिव्य हो । तुम्हारे ऐसे जन विरले हैं । परमात्मा तुम्हें सदा सुखी रखें । आनन्द...

देवराज – (मुस्कराता है) और पुजारी जी एक बात न भूलियेगा ।

पुजारी – (मुस्कराता है) क्या ?

देवराज – इस बार भगवती देवी का जाप करना है ।

पुजारी— जरूर, जरूर । यह तो मैं हमेशा करता हूँ ।

देवराज— और यजमान भईया होंगे ।

पुजारी – जानता हूँ देवराज ! वे बड़े हैं ।

देवराज – जी ! अच्छा पालागन महाराज ।

पुजारी – युग युग जीयो, सुखी रहो ।

[देवराज बाहर जाता है । पुजारी फिर प्रसाद बांटने लगता है, भक्तजन आपस में बातें करते हैं ।]

एक आदमी – देखा इस देवराज को । जब जरा दो पैसे कमाने लायक हुआ तो भइया को अलग कर दिया ।

दूसरा आदमी – हाँ भइया ! प्रभुदयाल की बहू ने पेटका समझ कर पाला

था। माँ तो जरा-से को छोड़ कर मर गयी थी। उसके जी पर क्या बीतती होगी?

तीसरा आदमी— तुम नहीं जानते, बड़ी तेज औरत हैं। देवराज ने केवल एक बार कहा था, भाभी इस रोज-रोज की खट-खट से तो अलग चूल्हा बना लेना अच्छा है। बस उसने दो चूल्हे कर के दम लिया। प्रभुदयाल तो सीधा-सादा आदमी है।

चौथा आदमी – अजी घर घर यही मिट्टी के चूल्हे हैं। बँटना क्या बुरा हुआ। प्रभुदयाल का खर्च भी तो ज्यादा है।

पहला आदमी— अजी खर्च ज्यादा है तो क्या प्रेम को भुलाया जा सकता है। आखिर उन्होंने ही तो इस योग्य बनाया है। बेटे भी इस तरह करने लगेंतो

दूसरा आदमी— भइया! बेटे और भाई में अन्तर होता हैं।

तीसरा आदमी—अजी! भाई और बेटेमें कोई अन्तर नहीं हैं। अंतर तो ये सब औरतें करवा देती हैं। बेटे की बहू आने पर घर में रोज तूफान मचा रहता है, और सब तो भइया के विवाह होते ही अलग हो जाते हैं।

[सब हँस पड़ते हैं और इसी तरह बातें करते-करते बाहर चले जाते हैं। पुजारी भी तब तक सब दीप बुझा चुकता है। केवल एक दीवा ठाकुर जी के पास मंद मंद प्रकाश फेंकता है। पुजारी ठाकुर जी को प्रणाम करता हैं और किवाड़ बन्द कर देता है। बाहर जाता हैं। अँधकार के साथ-साथ गहरी निस्तब्धता वहाँ छा जाती हैं।]

तीसरा सीन

समय—प्रातः ८--९ बजे।

स्थान—प्रभुदयाल का घर।

[प्रभुदयाल पूजा करके दुकान पर जाने का बन्दोबस्त कर रहे हैं। छोटा लड़का रमेश आंगन में बैठा तकली कात रहा है। नीला चौखट पर बैठी रोटी खा रही हैं। आँगन में सफाई हैं। कमरा भी साफ नजर आ रहा है। चूल्हे

से धुआं उठता है और ऊपर आसमानमें काले धुँधले बादल बनरहे हैं। वाता-वरण में एक गूँज-सी भरी है। तभी बाहर से भगवती हाथ में एक चिट्ठी लिये आती है और प्रभुदयाल के पास आ कर खड़ी हो जाती है।]

प्रभुदयाल— (देखकर) किसकी चिट्ठी है ?

भगवती—महेश की।

प्रभुदयाल— (मुस्कराकर) क्या लिखा है उसने ?

भगवती–वही लिखा हैं जो हमेशा लिखता है। कैसे भी हो रुपये का प्रबन्ध कर ही दें। अपने दरजे में अव्वल आया है।

प्रभुदयाल–(जाकेट के बटन लगाते-लगाते) अव्वल तो हमेशा ही आता है, परन्तु रुड़की जाने के हिए कम से कम १००) महीने का खर्च है।

भगवती–वहतो मै जानती हूँ, परन्तु रुपये नहीं मिलेंगे,इसी कारण लड़के का भविष्य नहीं बिगाड़ा जा सकता।

[क्षणिक सन्नाटा]

भगवती—मैं तो समझती हूँ कि रात को जो कुछ मैंने कहा था, वह ठीक रहेगा।

प्रभुदयाल— (सोचता है) तुम तो बस...

भगवती—जानती हूँ, दुकान गिरवी रखनेकी बातसे आपको दुःख होता है, अगर मेरे पास इतने गहने होते, जिनसे उसका काम चल जाता तो मैं कभी यह बात नही कहती। १०००) रुपये से एक साल का खर्च भी नही चलेगा। बात तीन साल की है।

प्रभुदयाल—कुछ भी हो, मैं बाप दादा की सम्पति नही बेच सकता। गिरवी रखकर छुड़ाने की आशा नही रहती। और फिर दुकान की वजह से साख बँधी है। एक बार गयी तो पेट भरना भी मुश्किल हो जायेगा।

भगवती—यह सब मैं जानती हूँ, परन्तु पूछती हूँ दुकान की ममता क्या लड़के की ममता से ज्यादा है ?

[प्रभुदयाल बोलते नही, केवल शून्य में ताकते हैं।]

भगवती—(सहसा याद करके) एक बात कहूँ।

प्रभुदयाल—क्या ?

भगवती—मैं देवराज को बुलाती हूँ।

प्रभुदयाल—क्यों ? क्या उससे रुपया माँगोगी ?

भगवती-सुनो तो। आप उससे कहना कि वह आपकी दुकान गिरवी रख ले !

प्रभुदयाल—(सोचकर) वह रख ले !

भगवती—जी हाँ। इस तरह बाप-दादे की सम्पत्ति बेचनी भी नहीं पड़ेगी और काम भी बन जायेगा।

प्रभुदयाल—बात तो तुम्हारी ठीक है।

भगवती—तो बुला लूँ उसे। फिर तो वह दिसावर चला जायेगा।

प्रभुदयाल—बुला लो।

भगवती—(पुकारती है) रमेश ! ओ रमेश ! भइया, जा तो अपने चाचा को बुला ला। कहना भाभी बुला रही है।

रमेश—(दूर से) जाता हूँ, माँ जी।

[कुछ क्षण वहाँ सन्नाटा रहता है। भगवती चूल्हे को तेज करती है कि रमेश और देवराज वहाँ आते हैं।]

भगवती — अरे ! क्या इधर ही आ रहा था ?

रमेश— हाँ माँ जी। चाचा तो यहीं आ रहे थे।

देवराज— क्या बात है भाभी ? सुना महेश रुड़की जाना चाहता है। बड़ी सुन्दर बात है।

भगवती— हाँ ! कई दिन से यही बात सोच रहे हैं।

देवराज— कुल तीन साल की बात है। भगवान की कृपा से हमारे कुटुम्ब में भी एक अफसर बनेगा। महेश है भी होशियार।

भगवती— यह तो सब ठीक है देवराज ! पर बात रुपयों पर आकर अटक गई है।

देवराज— क्या सोचा फिर ?

प्रभुदयाल— (खाँसते खाँसते) उसी के लिये तो बुलाया है।

देवराज— जी।

प्रभुदयाल— (एकदम) मैं कहता हूँ कि तू मेरी दुकान ले ले...।

देवराज— (चौंककर) मैं...।

प्रभुदयाल— हाँ। तीन हजार रुपये की जरूरत है।

देवराज— लेकिन भइया...।

प्रभुदयाल— मैं धीरे धीरे सब चुकता कर दूँगा।

देवराज— (दबता स्वर) लेकिन भइया, आप मुझसे कह रहे हैं... ?

प्रभुदयाल— हाँ...।

देवराज— आपकी दुकान मैं गिरवी रख लूँ ?

प्रभुदयाल—हाँ ...।

भगवती—इसमें बात ही क्या है। तेरे भइया नहीं चाहते कि दुकान किसी दूसरे के पास रहे। अगर छुड़ा भी नहीं सके तो अपने ही घर रहेगी।

देवराज-(साँस लेकर) ठीक कहती हो भाभी। व्यवहार-कुशल आदमी दूर की बात सोचता है परंतु बहुधा वह अपने अन्दर की मनुष्यता को भूल जाता है।

भगवती-- (चौंकती है) क्या कहता है तू ?

देवराज-- व्यवहार की बात है भाभी ! सोचूँगा। (हँसता है)

भगवती-- (बरबस हँसती है) हाँ हाँ सोच लेना और जवाब दे देना। आखिर महेश के लिये कुछ करना ही होगा। कल की दुनिया कहेगी माँ बाप ने पैतृक-संपत्ति के मोहमें पड़कर सन्तानका गला घोंट दिया। यह उचित नहीं होगा

देवराज-- नहीं भाभी! उसे जरूर रुड़की भेजो। (उठता है।) अच्छा मैं जाता हूँ, साँझ को आऊँगा।

[देवराज जाता है। प्रभुदयाल भी अनमने से उठते हैं।]

भगवती—डरती हूँ मना न कर दे।

प्रभुदयाल-- जो कुछ होना है वह तो होगा ही।

[वे भी लकड़ी उठाकर बाहर चले जाते हैं। भगवती अकेली आंगन में

बैठी सोचती है। आँखों में आँसू भर आते हैं। उन्हें पोंछती नहीं।]

चौथा सीन

समय— दोपहर के लगभग ११॥ बजे।

स्थान— देवराज का घर।

[देवराज का घर काफी सुन्दर और सजा हुआ है परन्तु अब खाली नजर आता है। केवल आँगन के पास दालान में सामान अस्त-व्यस्त अवस्था में पड़ा है। कुछ बक्स हैं, होलडाल है, सूट केस है। देवराज की पत्नी शारदा अन्दर ला-ला कर सामान वहाँ रख रही है। रसोई घर से धुँआ आ रहा है। बाहर से स्त्रियाँ आती हैं। दो चार मिनट बतलाकर चली जाती हैं।]

स्त्री— (आकर) बहू !

शारदा—जी।

स्त्री—कब तक लौटेंगी ?

शारदा— जी, कह नहीं सकती। कई वर्ष का काम है। बीच-बीचमें शायद कुछ दिन के लिए आ सकूं।

स्त्री— हाँ बहू, जो परदेश में कमाने जाते हैं घर उन्हें भूल जाता है।

[उसी समय देवराज वहाँ आता है, स्त्री बाहर जाती है।]

देवराज—शारदा ! अभी निबटी नहीं ! भाभी के पास भी चलना है।

शारदा—(उठकर पास आती है) अभी चलूँगी पर आपने कुछ सुना भी है।

देवराज—क्या ?

शारदा—जीजी ने अपना जेवर बेच दिया।

देवराज—जानता हूँ शारदा ! भाभी महेश को रुड़की कालेज भेजना चाहती है। जेवर इसी दिन के लिये बनता है।

शारदा—और आपके भाई साहबने दुकान उठानेका निश्चय कर लिया है।

देवराज—(चौंकता है) यह किसने कहा तुमसे ?

शारदा—अभी-अभी रामकिशोर की बहू कह रही थी। उन्हींके साझे में वे चमड़े की दुकान खोलेंगे।

देवराज—अच्छा ! (अचरज)

शारदा—और रुई का व्यापार भी करेंगे ।

देवराज— (हतभ्रम-सा) भइया रुई का व्यापार करेंगे ।

शारदा—जी हाँ । अब से खूब रुपया कमाना चाहते हैं ।

देवराज— (म्लान होता है) सचमुच ?

शारदा—और नहीं तो ये सब बातें क्या माने रखती हैं ?

देवराज—शायद तुम ठीक कहती हो । उन्हें रुपयों की जरूरत है । भाभी ने मुझसे भी कहा था ।

शारदा— (अचरज से) क्या कहा था ?

देवराज—मैं भइया की दुकान गिरवी रखकर उन्हें तीन हजार रुपये दे दूँ।

शारदा— (उत्सुकता से) फिर ।

देवराज—फिर क्या ? मैंने मना कर दिया ।

शारदा— (सन्तोष की सांस लेकर) आपने ठीक किया । सगे संबन्धियों से लेन-देन करके कौन आफत मोल ले ।

देवराज—लेकिन भइया तो सीधे-साधे आदमी हैं । इतना काम कैसे करेंगे ।

शारदा- (मुस्कराती है) घर में जीजी तो हैं । वे सब कुछ समझती हैं ।

शारदा—और फिर महेशकी बात है । उस पर उन्हें कितनी आशाएँ हैं ।

देवराज—(एक दम उदास होता है) हां, शारदा । तुम ठीक कहती हो । आशा सब कुछ करा लेती है......

[तभी रमेश का तेज स्वर पास आता है ।]

रमेश—चाची, चाची-ई-ई........ ।

शारदा—क्या है रमेश ?

[रमेश का प्रवेश]

रमेश—चाची तुम जा रही हो । मैं भी चलूँगा ।

शारदा—(हँसकर) चलेगा ?

रमेश—हाँ ।

शारदा—जीजी से पूछा तूने ।

रमेश—पूछा था चाची ! भाभी ने कहा है जी करता है तो चला जा ।

शारदा—(देवराज से) इसे ले चलो जी । अकेले जी भी नहीं लगेगा और फिर... ।

देवराज—तो ले चलो । लेकिन मुझे एक काम याद आ गया । जरा बाजार हो आऊँ । भाभी के पास सन्ध्या को चलेंगे ।

रमेश—चाचीजी, भाभी ने कहा है, शाम को खाना वहीं खाना ।

शारदा—अच्छा रे, पर अब तू मेरा काम करना, चल ।

[शारदा मुस्कराती-मुस्कराती उसे पकड़कर अन्दर ले जाती है । देवराज एक बार उन्हें देखकर हँसता है फिर उदास होकर बाहर चला जाता है । दूर कहीं घण्टा बजता है ।]

पांचवां सीन

समय—संध्याकाल ।

स्थान—देवराज का घर ।

[शारदा ने सब सामान सँभाल लिया है । नौकर बिस्तर बांधनेमें व्यस्त है और वह ट्रंक, सूटकेस गिन रही हैं । स्त्रियां अबभी आ जा रही हैं । शारदा काफी थकी जान पड़ती है । उसका सुन्दर चेहरा उतर रहा है । बोलती बोलती रो उठती है । बार-बार आतुरतासे बाहर झाँक लेती है । सहसा बिजली का प्रकाश चमक उठता है । तभी देवराज मन्द-मन्द गति से वहाँ आता है । हाथ में एक कागज लिये है । शारदा शीघ्रता से आगे बढ़ आती है ।]

शारदा—बड़ी देर कर दी आपने, कहाँ चले गये थे और आपके हाथ में क्या है ?

देवराज—(गम्भीरता से) यह भइया की दुकान का कागज है ।

शारदा—(काँपकर) क्या... आ...आ ?

देवराज—हाँ शारदा ! मैंने भइया की दुकान गिरवी रखकर उन्हें तीन हजार रुपये दे दिये हैं ।

[कागज फाड़ने लगता है ।]

शारदा—(हतभ्रम होकर) लेकिन इसे फाड़ क्यों रहे हैं ?

देवराज—(अनसुना करके) आग जलाई है शारदा।

शारदा—आग.... । क्यों ?

देवराज—बेशक आग ! शारदा ! सोचता हूँ कल को पागल न हो जाऊँ । इसलिये इस कागज को समूल नष्ट कर देना चाहता हूँ ।

शारदा—क्या कह रहे हैं आप ? तीन हजार रुपये क्या इसी तरह फेंक दिये जायेंगे ?

देवराज—नहीं शारदा ! भाभी को मैं जानता हूँ । उन्हीं की गोद में पल-कर इतना बड़ा हुआ हूँ।

शारदा---लेकिन...

देवराज—(बीच ही में) और सुनो ! होंगे तो भइया रुपये रखेंगे नहीं, यह भी जान लो कि वे देने आवेंगे तो लौटाऊँगा भी नहीं । ब्याज तक ले लूँगा व्यवहार की बात है ।

शारदा—(चिन्तित होकर) मैं नहीं जानती तुम्हें क्या होता जा रहा है ।

देवराज-- (हँसता है) यह तो मैं भी नहीं जानता। भाभी से जब मैंने कहा कि मैं दुकान गिरवी रख कर रुपये देदूँगातो वे रो पड़ीं । सच कहता हूँ शारदा ! जीवन में पहली बार आज मैंने भाभी को रोते देखा । मैं हँसता हूँ । तुम गुस्सा करती हो, करो । परन्तु मैंने भाभी को आज रोते देख लिया...

[कागज को जल्दी फाड़ कर रसोई घर की आग में डाल देता है । उसमें आग बुझ चली है, कागज गिरने पर धुँआ उठता है ।]

—सुनो शारदा ! रोने हँसने का यह सीन यहीं समाप्त होता है । प्रार्थना करता हूँ दुनिया इस समाप्ति को न जाने । और देखो, मैं अब भाभी के पास नहीं जाऊँगा । तुम जा सकती हो, लेकिन रमेश के बारे में कुछ मत कहना। भाभी कहे तो ले चलना । कहीं...

[आगे वह नहीं बोल सकता । धीरे-धीरे कागज के टुकड़ों को कुरेद-कुरेद

कर जलाता है। शारदा क्षण भर स्तम्भित, चकित उन्हें देखती है। फिर सहसा खूँटी पर से चादर उतार लेती है।]

शारदा--लेकिन मुझे तो एक बार जीजी से मिलना ही है। एक बार उनके चरण छूने ही है, नहीं तो दुनिया क्या कहेगी !

देवराज—हाँ हाँ तुम जाओ शारदा। वे तुम्हें इस बात का पता भी नहीं लगने देंगी।

[शारदा तब बाहर जाती है। नौकर साथ है। वहाँ केवल देवराज रह जाता है। वह बिजली के प्रकाश में अंगीठी की आग के बनते हुये रंगोंको देखता रहता है। धीरे-धीरे उसके मुख का रंग भी पलटता है, और आँसुओं की दो बड़ी-बड़ी बूँदें अंगीठी में गिर पड़ती हैं। एक धीमा सा शब्द होता है और फिर निस्तब्धता छा जाती है।]

६ इन्सान

पात्र

कुलभूषण—घर के मालिक   प्रेमबन्धु—मास्टर साहेब

जगमोहन—छोटे भइया   चन्द्रमणि—कुलभूषण की पत्नी

पड़ौसी, सिपाही, डाक्टर, दारोगा, नौकर इत्यादि।

पहिला अंक

समय—दिन और रात का सन्धिकाल

स्थान—एक विशाल भवन की खुली छत

[एक वर्गाकार खुली छत पर दो बेडसाइड टेबुल रखी हैं, उन पर फूलदार सफेद मेजपोश बिछे हैं। एक मेज पर कुछ किताबें-कापियाँ पड़ी हैं, दूसरी पर एक फूलदान रखा है। चार दफ्तरी और दो आराम कुर्सियाँ इस तरतीब से बिछाई हैं कि दोनों मेजों के दोनों तरफ एक-एक दफ्तरी कुर्सी है और बीच में एक आराम कुरसी है। दूसरी आराम कुरसी मेज के दूसरी तरफ अन्त में आ गई है।

दूर पश्चिम में गोलाकार सूर्य निस्तेज बूढ़े योद्धा की तरह विश्राम-भवन की ओर बढ़ रहे हैं। उनकी बेबसी पर पृथ्वी दुखी है। शान्त कोलाहल मचा है। घरों से उठता हुआ धुआँ सन्ध्याकालीन आसमान में धुँधलापन पैदा कर रहा है। छत बहुत देर से खाली है, परन्तु इस समय पास के जीने में पैरों की चाप सुनाई पड़ रही है। एक साथ कई व्यक्ति छत पर प्रवेश करते हैं। सबसे आगे एक युवती है। आयु लगभग २५-२६ वर्ष की है। सुन्दर है। चौड़ी लाल पाड़ की कत्थई साड़ी पहिने है। सिर आधा खुला है और तितलीनुमा कर्ण-फूल हिलते दीख रहे हैं।

दूसरा एक युवक है। खद्दर के साधारण कपड़े पहिने है, परन्तु कुछ जरूरत से ज्यादा गम्भीर नजर आता है। आयु लगभग ३०-३१ वर्ष है। हाथ में पुस्तक लिये है। ये मास्टर जी हैं।

तीसरा भी अभी जवान ही है, यद्यपि चेहरे पर व्यापारिकता की छाप इतनी गहरी है कि आयु ४० के लगभग जान पड़ती है। वेशभूषा सुन्दर है। सीधे आकर अन्तवाली आराम कुरसी पर लेट जाता है। युवती और दूसरा युवक किताबों वाली मेज पर आमने-सामने बैठ जाते हैं।]

कुलभूषण—हाँ तो मास्टर साहेब ! आपने भी सुना है ?

प्रेमबन्धु—क्या जी ?

कुलभूषण—यही कि हमारे शहर में भी दंगा होने वाला है।

प्रेमबन्धु—वह तो होना ही चाहिये ?

कुलभूषण—
चन्द्रमणि—] (अचरज से एक साथ) होना ही चाहिए ? क्यों होना चाहिये ?

प्रेमबन्धु-ये दंगे चेचक की बीमारी की तरह हैं और आप जानते हैं जब चेचक की बीमारी फूटती है तो बड़ी जल्दी चारों ओर फैल जाती है।

चन्द्रमणि—वह तो छूत की बीमारी होती है, मास्टर साहेब।

प्रेमबन्धु—दंगों के जर्म (कीटाणु) बीमारी के जर्मों से बहुत तेज दौड़ते हैं। वे मन के साथ चलते हैं। और फिर बात यह है कि चेचक की बीमारी का तो टीका एडवर्ड जेनर ने खोज निकाला था, परन्तु दंगों का इलाज अभी

तक किसी को नहीं सूझा है।

चन्द्रमणि--लेकिन मास्टर साहेब ! लोगों का ख्याल है चेचक का टीका बुरा है।

कुलभूषण--कौन हैं वे लोग ?

चन्द्रमणि--जी, उनमें गांधी जी भी हैं। उन्होंने प्रसिद्ध डाक्टर की अथारिटी कोट की है।

कुलभूषण—(अप्रसन्नता से) यह गांधी जी हर बात में टांग अड़ा देते हैं। Jack of all trades but master of none. अपने को अहिंसा का सर्वोत्तम ज्ञाता कहते हैं, परन्तु इन्होंने देश का नाश कर डाला है।

प्रेमबन्धु--गांधी जी को लोग बहुत गलत समझते हैं।

कुलभूषण—(तेजी से) वे काम ही गलती का करते हैं। उन्होंने तो भारत को तजुरबा करने की लैबोरेटरी बना रखा है। सब इन्सान मानो खरगोश और गिलहरियाँ हैं। जी चाहा जैसा इंजैक्शन लगा देते हैं। लोग मरते हैं या जीते हैं इसकी उन्हें चिन्ता नहीं है।

प्रेमबन्धु--मैं कहता हूँ आप गांधी जी से गलत आशायें रखते हैं।

कुलभूषण--हम आशायें कहाँ रखते हैं ? वे ही आशायें दिलाते हैं।

प्रेमबन्धु-(हँसकर) आप आशायें नहीं रखते तो आपको दुःख क्यों होता है ?

कुलभूषण—(आवेश में) आप गांधी जी का पक्ष लेते हैं।

चन्द्रमणि—(शीघ्रता से) मास्टर जी ठीक कहते हैं। गांधी जी देश के गौरव हैं। उन जैसे दिव्य पुरुष युग-युग के बाद पृथ्वी पर पैदा होते हैं। यह उन्हीं की कृपा है कि आप उनके कार्यों के विरुद्ध बोलने का साहस रखते हैं...।

प्रेमबन्धु—(बीच में टोक कर) देखिये मैं आप को बताता हूँ। गांधी जी अच्छे-बुरे जो भी हैं एक आवश्यकता हैं। जैसे गरमी के बाद वर्षा एक नियम है, उसी तरह महानाश के बाद शान्ति भी नियम है और......

[सहसा बड़ी तेजी से कोई जीने में चढ़ता है। सब चौंकते हैं। पल भर में एक १८-१९ वर्ष का युवक वहाँ आता है। उसके चेहरे पर विषाद स्पष्ट

है। उसने कुर्ता-धोती पहिना है। आते ही बीच वाली आराम कुरसी पर बैठ जाता है।]

चन्द्रमणि] क्या बात है जगमोहन ?
(एक साथ)
कुलभूषण] क्या बात है ?

जगमोहन—(उद्विग्नता से) आपने सुना, भइया ?

कुलभूषण—(उत्सुकता से) क्या ?

जगमोहन—तुमने नहीं सुना ? (मुड़कर) मास्टर साहेब ! आपने भी नहीं सुना ?

प्रेमबन्धु—दंगे के बारे में ?

जगमोहन—हाँ ! मास्टर साहेब ! उन लोगों ने एक मासूम बच्चे को उठाकर आग में फेंक दिया।

कुलभूषण
चन्द्रमणि] (एक साथ ? दुःख से) किसने हाय......?

जगमोहन—(कातर उद्विग्न) सच भाभी। वे पागल हो रहे थे। उन्हें बदला लेना था और बदला लेने के लिए उन्हें आदमी मिल नहीं रहे थे...।

प्रेमबन्धु—तो उसमें अचरज की क्या बात है ?

जगमोहन—(अचरज से) आप क्या कहते हैं मास्टर साहेब। जीते-जागते मासूम बच्चों को आग में फेंक देना क्या अत्याचार नहीं है ?

चन्द्रमणि—ओह......?

प्रेमबन्धु—मैं कह रहा था इसमें अचरज की क्या बात है ?

जगमोहन—मास्टर साहेब ! बच्चों को आग में भून देना साधारण बात है ? ओह मास्टर साहेब......!

कुलभूषण—लेकिन किसने जलाया बच्चे को ?

जगमोहन—(खड़ा हो जाता है) आदमी ने ?

कुलभूषण
चन्द्रमणि (एक साथ)
प्रेमबन्धु

किस आदमी ने ?
किसने ?
आदमी ने ?

जगमोहन—हमारे पड़ौस में जो साम्प्रदायिक युद्ध मचा है, उसी में हिन्दू धर्म के ठेकेदारों ने एक गरीब मुसलमान की चार बर्ष की लड़की को उठा कर आग में जिन्दा जला दिया ...... !

चन्द्रमणि—आह...... !

प्रेमबन्धु—इसी को तुम अचरज कहते हो, जगमोहन ? मैं कहता हूँ इस दुनिया में कोई अचरज नहीं है और फिर युद्ध में तो सब कुछ उचित है।

कुलभूषण—और मैं कहता हूं यह ठीक हुआ है। मुसलमानों को सबक मिलेगा। उन्होंने भी तो हिन्दू स्त्री बच्चों को जिन्दा जला डाला था। पिछले वर्ष १४-१५ बीमार आदमियों को, जिनमें स्त्री, बच्चे, बूढ़े, अपाहिज सब थे, एक मकान में मिट्टी का तेल डालकर फूंक दिया था। वह क्या था ? आज तुम्हें दर्द होता है कि एक हिन्दू ने एक मुसलमान की लड़की को फूंक दिया है। एक से क्या होता है। हिन्दू बुजदिल हैं नहीं तो...... !

प्रेमबन्धु (बीच में)—नहीं तो उन्हें अब तक एक हजार एक बच्चे जिन्दा भून डालने चाहिये थे। (बड़े जोर से हँसता है)

कुलभूषण—आप हँसते हैं ?

चन्द्रमणि—मास्टर साहेब ! उस बच्चे की माँ क्या सोचती होगी ? उसने किसी का क्या बिगाड़ा था ?

प्रेमबन्धु—सब माँ के पेट से पैदा होते हैं। क्या यह उन लोगों की मांओं का कुसूर नहीं है कि उन्होंने ऐसे बच्चे क्यों पैदा किये, जो दूसरों के बच्चों को बेगुनाह आग में फूँकते फिरें।

जगमोहन—ओह मास्टर साहेब ! यह जघन्य पाप है ? मैं हिन्दुओंकी बात नहीं कहता। ऐसा करने वाले मुसलमान भी पापी हैं।

प्रेमबन्धु—आप हिन्दू-मुसलमान कहते ही क्यों हैं ? क्यों नहीं कहते कि

आदमी राक्षस हो गया है। वह अब तक अपनी पाशविक मनोवृत्ति भूला नहीं है। (मुड़कर) चन्द्रमणि ! तुम भेड़िया और मेमनेवाली कहानी जानती हो।

चन्द्रमणि–जानती हूँ मास्टर साहेब ! भेड़िया मेमने को खाना चाहता था क्योंकि उसका स्वभाव ऐसा था। इसीलिए उसने कहा था अगर तुमने गालियाँ नहीं दीं तो तुम्हारे बाप ने दी होंगी। तुम अपराधी जरूर हो...।

प्रेमबन्धु—ठीक इसी तरह आदमी भेड़िया है। बहुत दिनों तक खूँखार जानवरों के साथ रहा है न ? फरक केवल इतना है कि उसे भेड़िये वाली बात कभी—कभी ही याद आती है। भेड़िया भी प्रेम करना जानता है (मुड़कर) आपने सुना होगा इन्सानों के बच्चे भी वर्षों बाद भेड़ियों की मांद से जीते-जागते पकड़े गये हैं...।

कुलभूषण—आपके उदाहरण मेरी समझ में नहीं आते। हिन्दू लोग स्वभाव के दयालु हैं और मुसलमान मांस खा-खा कर जानवरों की तरह खूँखार हैं।

जगमोहन—मांस तो हिन्दू भी खाते हैं भइया।

प्रेमबन्धु—मांस खाने से कोई खूँखार हो जाता है ? यह नियम नहीं है ; और फिर हिन्दू क्या कम खूँखार हैं। उनके दांत और नाखून तो मुलायम खोलके नीचे छिपे हैं। वे खूँखार होने के अतिरिक्त कायर और धोखेबाज भी हैं।

कुलभूषण (क्रोध से) आप हिन्दुओं के बारे में गलत राय रखते हैं ?

प्रेमबन्धु—मैं हिन्दू मुसलमान कुछ नहीं जानता। लड़ना इन्सानी खसलत है, इसीलिये वह भेड़िये की तरह मेमने को खाने का बहाना ढूंढा करता है। फरक केवल इतना है कि यहां भेड़िये और मेमने नहीं हैं, बल्कि हिन्दू मुसलमान सिख–जाट बनिये ब्राह्मण आदि हैं, जो बारी-बारी से भेड़िये और मेमने का पार्ट अदा करते रहते हैं और......

[सहसा नीचे से कोई पुकारता है]

आवाज—कुलभूषण बाबू हैं ?

कुलभूषण (शीघ्रता से) आया जी। (नीचे झांक कर) आप ! अभी

आता हूँ जी (मुड़कर) चंद्रमणि ! बाबू लीलाधर आये हैं, हिन्दू लीग के प्रधान। चाय का प्रबन्ध करो। (मुड़कर) मास्टर साहेब ! आपके विचार बहुत गलत हैं। कल बातें करूंगा।

[नीचे उतर जाते हैं। चन्द्रमणि पीछे-पीछे जाती है। कुछ क्षण पर चर—चर की आवाज होकर बन्द हो जाती है। फिर नीचे से हंसने की आवाज आती है।

जगमोहन—मास्टर साहेब ! आपकी बात मैं भी ठीक-ठीक नहीं समझता; पर यह तो पाप है, बन्द होना चाहिये। इस तरह तो जिया नहीं जा सकता (क्षण भर रुक कर) भइया हिन्दू लीग में जाना चाहते हैं। व्यापारी आदमी हैं। मैं जाकर जरा उनकी बातें तो सुन......

[जल्दी-जल्दी नीचे उतर जाता है। तेज आवाज होती है और फिर शान्ति छा जाती है, मास्टर साहेब अनमने—से किताब टटोलते हैं। कुछ देर बाद नौकर वहां आता है]

नौकर—बीबी जी ने कहा है आज छुट्टी कर दें। नीचे चाय तैयार है पीकर जावें। और कहती हैं कल से सबेरे आवें तो ठीक रहेगा।

[प्रेमबन्धु उदासीन-से उस नौकर को देखते हैं, फिर बिना बोले मुसकराते हुये नीचे उतर जाते हैं। नौकर किताबें उठाकर पीछे चलता है। कुछ देर उनके उतरने की आवाज गूंजती रहती है, फिर शान्ति छा जाती है। Fade] (परदा गिर जाता है।)

दूसरा अङ्क

समय—प्रातःकाल ७ और ८ के बीच

स्थान—उसी भवन का नीचे का कमरा

कमरे की दीवारों पर कुटुम्ब के अनेक चित्र टँगे हैं। गांधी जी व स्वामी-दयानन्द के दो बड़े चित्रोंके बीच में एक सुन्दर घड़ी है, जिसमें ७ बजनेवाले हैं। फर्श पर कालीन और दरी बिछी है। उत्तर-पच्छिम के कोनों में टीकवुड की दो सुन्दर मेजें हैं। दीवार के साथ साथ ७-८ कुर्सियां करीने से रखी हैं। बीच

में गोल तिपाइयों पर फूलदान और हाथी दाँत के खिलौने हैं। दो सोफे भी हैं।

कमरे में तीन ओर दरवाजे हैं। मकान के अन्दर वाला दरवाजा खुला है। बॅरांडेवाले दो दरवाजे बंद हैं, एक खुला है। एक दरवाजा किसी कमरेमें खुलता है वह बंद है। कमरे में बोर्ड नहीं है।

इसी समय बॅराडेवाले दरवाजे से मास्टर जी कमरे में आते हैं। घड़ी में एक नजर डाल कर उत्तर वाली मेज के पास कुरसी पर बैठ जाते हैं। बैठे रहते हैं। घड़ी सात बजा देती है। वे चौंकते हैं। तभी अंदर वाले दरवाजे पर चंद्र-मणि दिखाई देती है। कुछ घबराई हुई है]

चन्द्रमणि— ओह! आप, आप आ गये, नमस्ते!

प्रेमबंधु-- नमस्ते!

चंद्रमणि—मास्टर साहब। जगमोहन आज सबेरे से बहुत उद्विग्न है, एक बार तो रो भी पड़े थे।

प्रेमबन्धु— क्यों? क्या बात हुई?

चन्द्रमणि— बात तो वाकई बड़ी दर्दनाक है परंतु......

प्रेमबन्धु— दर्दनाक बात है......।

चन्द्रमणि-- कहते हैं उस दंगे में लोगों ने औरतों की छातियां तक काट डाली हैं...... (कहती कहती कांप उठती है)

प्रेमबन्धु— (मुसकराकर) बस! यह बात थी।

चंद्रमणि-- मास्टर साहेब! यह क्या थोड़ी बातहैं। उफ! छातियां काटना कितना अनर्थ है यह? दुनियां में कोई अच्छी बात ही न रहीं। मुझे तो कँप-कँपी आती है (काँपती है)।

प्रेमबन्धु-- महानाश समीप है, चन्द्रमणि! इसलिये कोई भी होने वाली बात बड़ी नहीं है। महानाश जितनी जल्दी पूरा हो उतना ही अच्छा है; लेकिन तुम छोड़ो उन बातों को पढ़ना शुरू करो...

[इसी समय अंदर के दरवाजे से जगमोहन आते हैं। अभी नाइट ड्रेस में हैं। फरक इतना है कि पाजामा कुरतेके स्थान पर जांघिया और बनियाइन है।

बहुत दुखी और चिन्तित हैं।]

जगमोहन—- मास्टर साहेब ! आपने तो सुना है कि लोगों ने अब औरतों की छातियां भी काटनी शुरू कर दीं। क्या होगा अब ?

प्रेमबन्धु— महानाश होगा जगमोहन ! तुम समझते नहीं। उन लोगों ने बड़ी दूर की बात सोची है। अब न तो छातियां रहेंगी और न मनुष्य मां का दूध पीकर शेर बनेंगे।

जगमोहन (तेजी में)— वे पापी हैं, दुरात्मा हैं। उन्हें गोली से उड़ा देना चाहिये। उन्हें जिन्दा गाड़ देना चाहिये।

प्रेमबन्धु— और मैं कहता हूँ उन्हें बहादुरी, दूरदर्शिता और प्रगतिशील विवेचन के उपलक्ष में पारितोषक मिलना चाहिये।

—-चन्द्रमणि आप क्या कहते हैं ?

जगमोहन—-(जोश में) आप कैसी बातें करते हैं मास्टर साहेब ! जो इस तरह मानवता का उपहास करता है, मातृत्व का अपमान करता है, वह भी क्या इन्सान है, वह तो...वह तो...

प्रेमबन्धु (बीच में)—देखता हैं(हँसता है)।

जगमोहन (क्रोध में) मास्टर साहेब !!!

प्रेंमबन्धु—कृपा कर आप बतायेंगे आप कौन हैं ?

जगमोहन—मैं कौन हूँ ? मैं तो इन्सान हूँ ?

प्रेमबन्धु—नहीं जगमोहन ! तुम इन्सान नहीं हो। तुम तो प्रसिद्ध व्यापारी कुलभूषण के छोटे भाई, जन्म के हिंदू, जाति के वैश्य, धर्म के सनातनी, फिर अग्रवाल असली या नकली, फिर वैष्णव-रामानंदी या रामानुजी; कोई अन्त है, इस होने का। फिर इन सब के ऊपर गरीब-अमीर, ऊँच-नीच, छूत--अछूत के भेद हैं। तुम सब कुछ हो पर इन्सान नहीं हो सकते। क्योंकि इन्सान ने स्वयं ही अपना असली भेश उतार कर ये भेश धारण किये हैं। वह इन्हें नहीं छोड़ सकता बच्चा अपने बाल नोंच कर आप ही चिल्लाता है, परंतु उन्हें छोड़ता नहीं।

जगमोहन—तो मास्टर साहेब, अब ये झगड़े बंद नहीं हो सकते।

प्रेमबन्धु—जब तक वर्ग हैं, वर्ग-युद्ध नहीं मिट सकते। हाँ, यदि वर्गीकरण प्राकृतिक सिद्धांतों पर किया जावे तो समाज में यथासम्भव शान्ति हो सकती है। महानाश के बाद प्रत्येक समाज में यही शान्ति पैदा हुआ करती है। उस दिन मैं यही कह रहा था कि गांधी जी महानाश के बाद आने वाली शान्ति का प्रतीक मात्र हैं। वह, महानाश को रोकने की व्यर्थ चेष्टा करता हुआ, मानव-समाज में असन्तोष, विद्रोह, उत्तेजना और घृणा पैदा कर रहा है। यह समाज के हित के लिए है, क्योंकि यही अवस्था महानाश के बाद सुख, शान्ति, संतोष और स्नेह में पलट जावेगी। तब लोग गांधी को पहिचानेंगे। ये दर्शन और अर्थ-शास्त्र की विचारधारायें अलग-अलग होकर भी......

[सहसा बरामदे वाला दरवाजा तेजी से खुलता है। बाबू कुलभूषण घबराये हुये प्रवेश करते हैं। उनके वस्त्र अस्त-व्यस्त हैं। चेहरा पीला पड़ गया है। सब चौंकते हैं।]

जगमोहन } (एक साथ) क्या हुआ, भइया ?
प्रेमबन्धु } (एक साथ) क्या दंगा हो गया ?
चन्द्रमणि } (एक साथ) क्या हुआ आपको ?

(कुरसी से उठकर जल्दी-जल्दी उनकी ओर आती है। कुलभूषण धम्म से एक कुरसी पर गिर पड़ते हैं)

कुलभूषण—(घबराये हुये स्वर में) दंगा हो गया।

जगमोहन } (एक साथ) कहाँ हुआ ?
प्रेमबन्धु } (एक साथ) कहाँ हुआ ?
चन्द्रमाण } (एक साथ) कैसे ?

कुल भूषण (उसी स्वर में)— मुसलमानों ने गोपीगंज पर हजारों की तादाद में हमला कर दिया है। कई हिन्दुओं को काट डाला, दूकानें लूट लीं। मकानों में आग लगा दी।

चन्द्रमणि— हाय......

कुलभूषण— सब बाजार बन्द हो गये हैं। भगदड़ मच रही है।

प्रेमबन्धु— यह कायरता है । इसी कारण दंगों को प्रोत्साहन मिलता है ।

जगमोहन— मगर आपके बाजार का क्या हाल है ?

कुलभूषण (तनिक स्वस्थ होकर)— वह तो अभी तक खतरे से बाहर हैं । इधर भी कोई डर नहीं है, परन्तु दारागंज, दुर्गाबाड़ी, गोपीगंज में बहुत बुरी हालत है । रेल का रास्ता उधर से है । बचारे मुसाफिर बेगुनाह मरेंगे ?

जगमोहन (अचरज और करुणा से)—मुसाफिरोंको भी मारेंगे वे लोग ?

कुलभूषण-- जो भी सामने होगा, उसी को मारना उनका धर्म होगा । खंखार, वहशी राक्षस हैं वे लोग ?

प्रेमबन्धु-- तो यह अच्छा ही हुआ । उमस तंग कर रही थी । बादल जी भर कर बरस लेगा तो दिल हल्का हो जावेगा ।

[इसी समय जगमोहन चुप-चाप अन्दर के दरवाजे से निकल जाता है । कोई नहीं देखता ।]

चन्द्रमणि–मास्टर साहब । दंगा होगा यह तो लोग कितने दिनों से जानते थे । उनको यह भी पता था कि व्यर्थ ही लाखों का नुकसान होगा । बेगुनाह लोगों का रक्त बहेगा परन्तु कोई भी दंगे को रोक नहीं सका ।

प्रेमबन्धु-- रोकता कौन ? सभी तो अपने विरोधियों को कुचल देना चाहते थे । लड़ाई में सभी विरोधी होते हैं ।

कुलभूषण— अच्छा जगमोहन जरा तुम .... (चौंक कर) जग-मोहन कहां गया ?

चन्द्रमणि] (एक साथ चारों तरफ देखकर) जगमोहन ।
प्रेमबन्धु] जगमोहन ।

[चन्द्रमणि जल्दी से अन्दर जाती है । कुलभूषण और मास्टर साहब बाहिर । पांच मिनट बाद सब घबराये हुए लौटते हैं]

कुलभूषण] (घबराकर) चला गया, मास्टर साहब ।
चन्द्रमणि] कहीं गये होंगे, मास्टर साहेब !

प्रेमबन्धु (सान्त्वना के स्वर में) आप घबराइये नहीं। मैं उसे खोज लूंगा।

चन्द्रमणि—आप नहीं...।

कुलभूषण—दोनों नौकरों को भेजता हूँ। ओह! काला मुँह करेगा मेरा...

प्रेमबन्धु—मेरा मतलब था वह अभी वहाँ नहीं पहुँचा होगा। लौटा दूँगा।

[मास्टर साहब जल्दी-जल्दी बाहिर चले जाते हैं। चन्द्रमणि और कुलभूषण उनके पीछे मुख्य दरवाजे तक आते हैं और पागलों की तरह वहीं से देखते हैं। दोनों नौकर भी लाठियां लेकर वहीं से गुजरते हैं। बाहिर सड़क पर लोग तेजीसे आ जा रहे हैं। उनके चेहरे भयसे पूर्ण हैं। वे जोर से नहीं बोलते; जल्दी-जल्दी फुस-फुस करते हैं। पुलिस की लारियां तेजी से दौड़ती हैं। पता लगता है अब तक पांच मौत हो चुकी हैं। घायलों की संख्या लगभग बीस है। चन्द्रमणि व कुलभूषण एक दूसरे की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखते हैं, परन्तु वहां से हटते नहीं। उसी अशान्त वातावरण में परदा गिर जाता है]

तीसरा दृश्य

समय—लगभग साढे १२ बजे।

स्थान—उसी भवन का अन्दरूनी हिस्सा।

[सोने के कमरे में कुलभूषण, चन्द्रमणि और एक डाक्टर हैं। पुलिस के दारोगा भी बैठे हैं। चन्द्रमणि और कुलभूषण के चेहरे पीले निस्तेज हैं। डाक्टर थर्मामीटर लिये पलंग पर झुके हैं। पलंग पर एक व्यक्ति लेटा है। पट्टियाँ इतनी बँधी हैं कि वह पहिचाना नहीं जाता; परन्तु वह जगमोहन है। संज्ञाहीन है, परन्तु बार-बार तेजी से उठ बैठता है। बोलने लगता है। दारोगा जल्दी-जल्दी लिखते हैं। कमरे में दबी हुई शान्ति है। बाहिर हवा चल रही है]

चन्द्रमणि—कितना टेम्प्रेचर है डाक्टर साहब?

डाक्टर—१०५, हालत अभी तक सम्हली नहीं है।

कुलभूषण—क्या होगा डाक्टर? मैंने न जाने कितनी बार समझाया, परन्तु मुझे सदा इसने छोटे दिल का, सांप्रदायिक और नजाने क्या क्या कहा।

जो जानते हुए साँप के मुंह में उँगली डाल देता है, उसे क्या बचाया जा सकता है डाक्टर ? ...ओह माँ ;

जगमोहन (सहसा जाग कर)--कहाँ हैं वे लोग जो अपनी मनुष्यता को भूलकर गरीबों को मार डालना चाहते हैं... ।

चन्द्रमणि--मोहन ! तुम क्या कह रहे हो ? यहाँ तो कुछ भी नहीं है ?

जगमोहन (उसी तरह)--मास्टर साहेब । उन्होंने बच्चों को भून डाला है । घरों में आग लगा दी हैं । स्त्रियाँ जल रही हैं । क्या करूँ मास्टर साहेब... मास्टर साहेब......

कुलभूषण--मोहन, भइया ! मोहन चुप हो जाओ ! सब ठीक है ।

[डाक्टर धीरे धीरे लिटा देते हैं । छाती पर हाथ रखते हैं और पलक ढक देते हैं ।]

दारोगा--कुछ भी हो डाक्टर ! मास्टर साहेब ने साहस का काम किया । वे अकेले थे । मैंने कहा-'खतरे में जाना ठीक नहीं है । जरा ठहरो ।' कहने लगे-एक भावुक हैवान इन्सान बनने को पागल हो रहा है । उसे बचाना ही चाहिए दरोगा साहेब !' उनकी बातें मैं नहीं समझता था, परन्तु उनकी हिम्मत मानता हूँ । एक डण्डा लेकर उस तंग रास्ते पर बढ़े चले गये । मजबूरन मुझे केवल दो सिपाहियों के साथ उनका पीछा करना पड़ा...... ।

जगमोहन (फिर जाग कर)--तुम सौ हो वह अकेला है । निहत्था, पर-देसी, तुम्हारे शहर में आया है । तुम इसे मारोगे ? मेहमान को मारोगे ? नहीं, नहीं ! तुम खून चाहते हो तो लो मेरा खून लो । मेरा खून पी लो ..... ।

दारोगा--ठीक यही शब्द थे डाक्टर ! जो हमने सुने थे । जिनको सुनकर मास्टर साहेब पागलों की तरह भीड़में घुस गए थे; परन्तु इससे पहिले कि वे वहाँ पहुँचते कई लाठियाँ उठ चुकी थीं । मैं जब वहाँ पहुँचा तो मास्टर साहेब ने जग-मोहन बाबू को एक हाथ से छाती से चिपका रखा था । दूसरा हाथ उठा कर कह रहे थे, जो भी आगे बढ़ा तो सिर फोड़ दूँगा । उनकी आँखें क्रोध से लाल थीं । चेहरा तमतमा रहा था । मैं एक दम न जाने कैसे सीटी बजा बैठा । भीड़

भाग चली। पांच मिनट बाद आपके दोनों नौकर, दोनों सिपाही और मैं, उन दोनों के ऊपर झुके हुए थे और हमारे चारों तरफ जगह-जगह खून बिखरा हुआ था।

कुलभूषण—मास्टर साहेब को भी चोट लगी है ?

डाक्टर साहेब–जी हाँ। उनका बाँया हाथ टूट गया है। सिर में भी हल्का जख्म है।

चन्द्रमणि--वे कहां हैं ?

डाक्टर साहेब—जगमोहन को ड्रेसिंग करवाकर घर चले गये थे। कह गये थे जल्दी लौट आऊँगा।

[चन्द्रमणि सहसा रो उठती है; जगमोहन फिर चौंकता है]

जगमोहन--तो तुम्हें भी मारा।...अहह तुम मुसलमान हो वे हिन्दू थे। इन्सान कोई नहीं है। फिर तो एक न एक को मरना था। तुम मर गये, दोस्त अच्छा हुआ। वहाँ जाकर अपने खुदा से पूछना कि उसने तुम्हें इस दुनियामें क्या इन्सान के हाथ से मरने के लिये भेजा था और कहना कि.......।

[डाक्टर जगमोहन को गोदी में भरते हैं, वह छुड़ाते है।]

जगमोहन--मुझे रोकोगे ! मैं न हिन्दू हूँ न मुसलमान। केवल इंसान हूँ। इन्सान को कोई नहीं रोक सकता......।

कुलभूषण— इन्सान ! इस इन्सानियत ने ही उसकी जान ली है। चाँद को भी कोई पकड़ सकता है। मुसलमानों में इंसानियत की कल्पना करना सांप के दांतों में अमृत की कल्पना करना है।

चन्द्रमणि-- लेकिन मोहन को तो हिन्दुओं ने भी पीटा है।

[तभी दरवाजे पर कोई हल्की हल्की दस्तक देता है]

चंद्रमणि--मास्टर जी आ गये !

[शीघ्रता से बाहिर जाती है। नौकर इशारा करता है, चौक के दूसरी ओर बड़े दरवाजे पर मास्टर साहेब नजर आते हैं। उनके सिर पर पट्टी बंधी है। हाथ सेंट जोन स्लिंग में बँधा है। हवा तेज है, मास्टर साहेब और मणि के

कपड़े हिलते है।

चन्द्रमणि (भर्राये स्वर में)—मास्टर साहेब...... ।

प्रेमबन्धु (शान्त स्वर में)—क्या हाल है उसका ?

चन्द्रमणि (आंसू पोछकर)—हाल खराब है मास्टर साहेब ! आप अगर न जाते तो शायद वे जिन्दा भी घर न आते। आपने जो कुछ...

[चलते-चलते बातें करते हैं]

प्रेमबन्धु (हँसते हैं)—मैंने वही किया जो सब करते हैं, अपनों को बचाना और स्वार्थ के लिए मरना। बात जगमोहन की अलबत्ता है। वह भावुक इन्सान बनने चला था; परन्तु भूल गया भावुकता जिस प्रकार क्षणिक होती है उसी तरह...(सहसा अपनेको रोककर) हाँ तो डाक्टर कहते क्या हैं ?

चन्द्रमणि—डाक्टर क्या कहेंगे ? जगमोहन ही सब कुछ कह रहे हैं।

प्रेमबन्धु—चुप नहीं हुये ?

चंद्रमणि—नहीं (रो पड़ती है)।

प्रेमबन्धु—छी मणि ! रोती हो ! (नर्म होकर) ऐसे वक्त रोना आ ही जाता है। जगमोहन को जब मैंने छाती से अलग किया, तो मैं भी रो पड़ा था। अपनों को देखकर आंखों में सदा आंसू उमड़ आते हैं और दूसरों को देखकर खून उभर आता हैं। इस दुनिया का यही नियम हैं। मां दूसरे के बच्चे को प्यार कर ही नहीं सकती।

(तभी दूसरे रास्ते से दारोगा साहेब जाते हुये नजर आते हैं)

प्रेमबन्धु—दारोगा साहेब तो जा रहे हैं चन्द्रमणि।

चन्द्रमणि—(हठात् काँपकर)—दारोगा साहेब जा रहे हैं... ।

(शीघ्रता से चौक पार करती है, उधर से कुलभूषण बाहिर आते हैं)

कुलभूषण—(मणि को न देखकर)—मणि ! ओ मणि !

मणि (काँपती-काँपती)-क्या है ? क्या कहा डाक्टर ने ?

कुलभूषण—(रुँधे स्वर में)—डाक्टर ने कहा है...

(हवा का एक झोंका उधर से निकल जाता है। कुलभूषण की आवाज सुनाई नहीं देती। केवल मणि वहीं दरवाजे पर गिर पड़ती है, मास्टर साहेब